Chapter- 2

अध्याय : २

“मनोवैज्ञानिक उपन्यास : सैद्धांतिक निरूपण”

२:००:० प्रास्ताविक :

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव मन की समस्याओं को विशेषतया रेखांकित करने का उपक्रम रहता है । यद्यपि प्रत्येक उपन्यास में मानवमन के रहस्यों की कथा निहित रहती है, तथापि मनोवैज्ञानिक उपन्यास केवल उन उपन्यासों को कहा जाएगा जहाँ मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति को, अन्य तमाम प्रवृत्तियों पर तरजीह दी जाएगी । मुंशी प्रेमचंदने उपन्यास विषयक जो परिभाषा दी है - ''मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ'' - उसमें हमें मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्तिका उत्स मिलता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों का मानसिक गठन एवं उनकी तत्संबंधी प्रक्रिया उपन्यास के अथ और इति दोनों है । परिस्थितियाँ यहाँ पात्र के मन के घात-प्रतिघात रूप में न आते हुए अपनी पृथक सत्ता विद्यमान रखती है । यहाँ घटनाएँ मानवमन का प्रतिफल

नहीं, अपितु मानसिक प्रक्रिया का आंशिक परिचायक और उसका उपसंहार पात्र है । यदि सूत्र रूप में कहा जाए तो कह सकते हैं कि मानव चित्त की मनोभूमिका का प्रत्यक्षीकरण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । मनुष्य का मन बड़ा ही जटिल और पेचीदा है । मानवमन की इस जटिलता को, विचित्रता को, उसकी संकुलता को आलोकित करने का श्रेय मनोविश्लेषण पद्धति के जनक सिगमंड फ्रायड को है । उन्होंने मानव मन के चेतन तथा अचेतन स्तरों को स्वीकार कर, उनकी परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के मार्मिक तथ्यों का अनुपम उद्‌घाटन किया है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पात्रों की मनोभूमि में विचरते हुए सहज ही मनोविश्लेषण की प्रक्रिया में लीन हो जाता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यास में व्यक्ति को समाज के सर्वग्राही आधिपत्य से मुक्ति दिलाकर उसकी मूल चेतना को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाता है । आधुनिक जीवन अनेक संघर्षों एवं दबावों से घिरा हुआ है । फलत: मानवचेतना पहले जैसी सीधी-सादी, निर्द्वन्द्व नहीं रह गई है । वह अनेकानेक अंत: संघर्षों से गुजरते हुए अस्पष्ट और दुरूह हो गई है । विशाल जन-प्रवाह में मनुष्य के व्यक्ति रूप को मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार प्राधान्य देता है । मनुष्य की एकांतता, उसका सूनापन, उसका संत्रास, उसकी आंतरिक पीड़ा को उजागर करने का यहाँ एक संनिष्ठ प्रयास होता है । समाज में जो कुछ भी दिख पडता है, केवल वही वास्तविकता नहीं है । मनुष्य के मन में जो तरह-तरह के उहापोह चलते हैं, उनकी भी एक वास्तविकता होती हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यास इस आंतरिक एवं चैतसिक यथार्थ का कायल है । मनुष्य की गति प्राय: दो रूपों में होती है - Man in Action तथा Man in contemplation । प्रथम प्रकार की गति का चित्रण प्राय: सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यासों में मिलता है । दूसरी प्रकार की गति का चित्रण मनोवैज्ञानिक उपन्यास का विषय है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पात्रों के आंतरिक जीवन को जगाकर मनोविश्लेषण द्वारा उनके अंत: को पाना चाहता है । मनुष्य के रोजाना जीवन में उसके कर्मकेन्द्र गिने-चुने होते हैं, परन्तु उसकी

चिंतनधारा बड़ी विशद होती है । यदि कोई व्यक्ति अपने दैनंदिन जीवन के कार्य कलापों का लेखा-जोखा रखता है तो ऐसी घटनाएँ दिन में पाँच दस या ज्यादा से ज्यादा दस-पन्द्रह हो सकती हैं, परन्तु यदि कोई व्यक्ति पूरे दिन में आये हुए विचारों को लेखा-जोखा रखना चाहे तो भी कदाचित नहीं रख सकता । सामाजिक उपन्यासकार बाहरी और स्थूल घटनाओं को लेकर चलते हैं जब कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का वास्ता मन में चलने वाली गतिविधियों से रहता है । सामान्य तैार पर हम यह मानकर चलते हैं कि जीवन में बहुत से घटनाएँ आकस्मिक रूप से होती हैं, जीवन में कई बार कुछ कार्य गलती से हो जाते हैं, जीवन में नींद के समय स्वप्न स्वाभाविक रूप से आते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है । हर अकस्मात के पीछे कोई न कोई कारण होता है । हर मानव व्यवहार के पीछे भी कोई न कोई कारण छिपा हुआ रहता है और स्वप्न भी अनायास नहीं होते । फ्रायड ने स्वप्न-विश्लेषण की समूची प्रक्रिया को समझाने की चेष्टा की थी । फ्रायड के बाद अन्य अनेक मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्नों में अन्तर्निहित सूक्ष्म अर्थों को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है । स्वप्न में आने वाली चीज वस्तुओं के प्रतीकों को स्पष्ट करने का कार्य भी इन मनोवैज्ञानिकों ने किया है । अत: कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मनोव्यापारों को लेकर चलता है । मानव मन की पेचीदगियों का पार पाना कठिनतम ही नहीं असंभव भी है । अत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार यह दावा तो नहीं कर सकता कि उसने पूर्ण रूपेण मनुष्य को पा लिया है या समझ लिया हे परन्तु मानव मन के आन्तर प्रवाहों को वैज्ञानिक ढंग से समझने-समझाने का एक संनिष्ठ प्रयास वह अवश्य करता है । अत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों, समस्याओं तथा ग्रंथियों का विशेष महत्व होता है । फ्रायड ने मनुष्य की समग्र चेतना को काम द्वारा प्रचालित निर्दिष्ट किया है । मनुष्य के तमाम कार्यकलापों के पीछे उसकी काम-भावना (Sex) कारणभूत होती है । कामभावना को जब स्वस्थ मार्ग नहीं मिलता, तब उसे लेकर मनुष्य के मन में अनेक गांठें पैदा होती हैं । इन गांठों

को हम काम-कुंठाओं की संज्ञा दे सकते हैं । आगे के पृष्ठों में इन सबकी विस्तृत विवेचना करने का हमारा उपक्रम रहेगा ।

२:०१:०० मनोवैज्ञानिक क्षण (Psychological Moments)

जैसे सामाजिक उपन्यासों में घटना-व्यवहारिक क्षण होते हैं, आंचलिक उपन्यासों में लोकजीवन-रस के क्षण, व्यंग्यात्मक उपन्यासों में हास्य और व्यंग्य के क्षण, नाटकीय उपन्यासों में नाटकीय वक्रता Dramatic Irony के क्षण होते हैं, ठीक उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों का महत्व अपरिहार्य है । मनोवैज्ञानिक क्षण अर्थात् कुछ ऐसे क्षण जिनका संबंध मानसिक उहापोह, अन्तर्द्वन्द्व और खींचातानी से होता है ।

सामान्यतया मानवजीवन की गतिविधियों को दो तरह से वर्गीकृत किया गया है - (१) कार्यरत मनुष्य (Man in action) तथा (२) Man in contemplation अर्थात् विचारशील या चिंतनशील मनुष्य । मनोवैज्ञानिक क्षणों की संभावना चिंतनशील मनुष्य की गतिविधियों में अधिक पायी जाती है । इस संदर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों का बहुत महत्व है । सत्य की प्राप्ति जीवनों में नहीं, मन के विषयों में नहीं, इसके विकास में नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक क्षणों में होती है । डॉ. जोड के शब्दों में व्यक्ति की जब हम परीक्षा करते हैं, तो वह व्यक्तित्व नहीं होता, वह केवल क्षणिक व्यक्तियों का अनुक्रम होता है ।"[१]

डॉ. रामदरश मिश्र ने डॉ. जोड के जिस कथन की ओर इशारा किया है, वह इस प्रकार है - "For and here modern psychology makes itself feet-man individual is not when you examine him, a personality at all, he is merely a succession of fleeting persons each of

whom endures for a psychological moment."[२] इस प्रकार हम देख सकते हैं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों की अभिव्यंजना की एक विशेष इयत्ता है । जिस प्रकार बूंद-बूंद मिलकर जलप्रवाह तैयार होता है, ठीक उसी प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक क्षणों का लेखा-जोखा ही अन्ततः एक मनोवैज्ञानिक कथापिंड की रचना करता है । जिस प्रकार नाटकों में पंचसंधियों के द्वारा नाटक को एक नाटकीय गति प्राप्त होती है, ठीक उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण पात्रों की आंतरिक गतिविधियों का ई.सी.जी. प्रस्तुत करता है । ड्रामेटिक आइरनी के कारण जिस प्रकार नाटक में नाटकीयता का समावेश होता है, मनोवैज्ञानिक क्षणों के कारण यहाँ भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नाटकीयता और जीवंतता का समावेश होता है ।

हम प्रातःकाल उठते हैं और देर रात में सोते हैं । इस समूची समयावधि में हम कई प्रकार के कार्यकलापों से गुजरते हैं । उनमें कई कार्य तो ऐसे होते हैं, जिनको हम अपने रोज़ाना जीवन में लगभग हर रोज़ करते हैं । परन्तु कई कार्य ऐसे भी होते हैं जो अलग किस्म के होते हैं । कुछ कार्यों को हमारे भीतर की मानसिकता निर्देशित करती है । उन कार्यों को मनोवैज्ञानिक क्षण दिशा देते हैं ऐसा हम कह सकते हैं । एक-दो उदाहरणों के द्वारा हम इस बात को स्पष्ट करना चाहेंगे ।

उदाहरण के तौर पर मानो एक बच्चा प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अपने माता-पिता को प्रणाम करता है, वंदन करता है या Wish (विश) करता है । परन्तु किसी एक विशेष दिन में, वह ऐसा करना चूक जाता है । सामान्य तौर पर इससे गलती (Error) या मानव-भूल का नाम दिया जाता है । परन्तु यदि हम एक मनोवैज्ञानिक या मनोचिकित्सक के नजरिये से देखें तो इस क्षण को मनोवैज्ञानिक क्षण कहा जाएगा । जिसके कारणों की पड़ताल में यदि हम पड़ें

तो कई एक बातें सामने आ सकती हैं जैसे -

(क) माँ-बाप ने अगले दिन उसे अनूचित कारणों से डाँटा हो ।

(ख) माँ-बाप ने जिन बातों के लिए मनाही की हो उनमें से कोई कार्य उसने किया है ।

(ग) उसने ऐसी कोई भूल की हो जिसके कारण वह पछता रहा हो

(घ) या माँ-बाप के किसी अनुचित कार्य को उसने देख लिया हो । तो यहाँ उस क्षण को मनोवैज्ञानिक क्षण कहा जाएगा, जिसमें वह बालक माता-पिता को नमस्कार करना भूल जाता है ।

मनुष्य की यह जन्मजात प्रवृत्ति है कि वह अपनी प्रिय प्रवृत्तियों की ओर ही झुकता है, जो अप्रिय है उसे करना बड़ा कठिन है । उसके लिए पक्का मनोबल चाहिए, संकल्प चाहिए, निर्धार चाहिए । परन्तु अपनी प्रिय प्रवृत्तियों की ओर हमारा मन सहजता से चला जाता है । मन की प्रवृत्ति भी पानी जैसी है । पानी का प्रवाह नीचे की ओर जाता है, पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए अतिरिक्त शक्ति काम में लगानी पड़ती है । ठीक उसी तरह मन नीचे की ओर, अर्थात् प्रिय प्रवृत्तियों की ओर ढरकता है । अप्रिय परन्तु कल्याणकारी कार्यों में मन को लगाने के लिए अतिरिक्त संकल्प, बल की आवश्यकता पड़ती है । दर्शन की भाषा में इसे 'प्रेय' और 'श्रेय' कहते हैं । 'प्रेय' सहज है, श्रेय कठिन है, प्रयत्नसाध्य है । मनोविज्ञान की भाषा में इसे (ID) और 'Ego' कहते हैं । Id की प्रवृत्ति मनुष्य को प्रेय की तरफ ले जाने की है, 'ego' की प्रवृत्ति मनुष्य को श्रेयं की तरफ ले जाने की है । उदाहरणतया मानो कोई लड़की किसी लड़के को प्रेम करती है और उन दोनों को ऐसा लगता है कि उनके अभिभावक तथा जात-बिरादरी के लोग उनके इन संबंधों को मान्यता नहीं देंगे । लड़का लड़की को भागकर विवाह करने के लिए प्रेरित करता है । समय और तारीख निश्चित

होती है । उस समय लड़की को बडे भारी मनोसंघर्ष से गुजरना पड़ता है, बड़ी जद्दोजहद करनी पड़ती है । 'Id' कहता है, भाग चलो फिर देखा जाएगा, हिम्मते मर्दा तो मददे खुदा, आगे आगे गोरख जागे, परन्तु उसका 'ego' कहता है कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, उसके माँ बाप पर क्या गुजरेगी, उसके पिता दिल के बीमार हैं उनका क्या होगा, जाति-बिरादरी में उनकी माता-पिता की जग-हँसाई होगी, आदि आदि ।

यह 'Id' और 'ego' का जो संघर्ष है, यह 'प्रेय' और 'श्रेय' का संघर्ष है, अशिव और शिव का संघर्ष है, असुर और सुर का संघर्ष है, रावण और राम का संघर्ष है । परन्तु यह संघर्ष जब चलता है तो मन के भीतर बहुत उहापोह होता है, मनोमंथन होता है । मन एक दोराहे पर आकर खड़ा हो जाता है और उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ता कि क्या करें और क्या न करें । जिन क्षणों में यह संघर्ष घटित होता है उन क्षणों को हम 'मनोवैज्ञानिक क्षण' (Phychological moments) कह सकते हैं ।

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि मानव मन अपने प्रिय कार्यों की ओर अधिक क्षीप्रता से, अधिक तीव्रता से, अधिक प्रगाढ़ता से भागता है । हमारा मन तो बहुत कुछ करना चाहता है परन्तु समाज में आचार-विचार के, धर्म-अधर्म के, नीति-नियम के, कुछ अवरोधक होते हैं जिनको मनोविज्ञान की भाषा में 'Social and ethical Taboos' कहते हैं । ये 'Taboos' एक प्रकार से Censership का कार्य करते हैं । हमारा मन बहुत-सी प्रवृत्तियों को करना चाहता है परन्तु उक्त सामाजिक मान्यताओं के कारण हम कर नहीं पाते । अत: मनुष्य को जब मौका मिलता है, एकांत मिलता है तो वह अपने इन 'प्रेय' कर्मों की ओर प्रवृत्त होती है । सामान्य तौर पर ऐसे कार्यों को पाप, अश्लील, घृणित या विकृत कहा जाता है । फलत: करने वाले के मन में एक प्रकार का अपराध

बोध (guilt) छाया रहता है । अत: जब वह अपने एकांतिक क्षणों में इन प्रवृत्तियों की ओर, इन प्रवृत्तियों में तल्लीन होते हैं, तो उन क्षणों को भी मनोवैज्ञानिक क्षण (Phychological moment) में परिगणित किया जाएगा ।

संक्षेप में उन क्षणों को मनोवैज्ञानिक क्षण की संज्ञा दी जाती है जिनका संबंध मानव मन की अतल गहराइयों से होता है और जहाँ एक प्रकार का मानसिक और सामाजिक संघर्ष होता है । इनकी विस्तृत चर्चा तो यथेष्ठ स्थान पर होगी यहाँ केवल दो-तीन औपन्यासिक उदाहरणों के द्वारा इनको स्पष्ट करने का हमारा उपक्रम है ।

२:०१:०१ मनोवैज्ञानिक क्षण : औपन्यासिक उदाहरण

जैनेन्द्र कुमार द्वारा प्रणीत 'परख' हिन्दी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास माना जाता है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक सत्यधन एक ढुलमुल प्रकृति का नायक है । कट्टो और गरिमा को लेकर उसके मन में द्वन्द्व चलता रहता है । उसका व्यवहारिक मन उसे गरिमा की ओर ले जाता है क्योंकि गरिमा के पिता के पास दौलत है, इज्जत है, स्टेटस है । परन्तु दूसरी ओर उसका भावनात्मक मन उसे कट्टो की ओर खींचता है । कट्टो एक बाल विधवा है, अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है, परन्तु गाँधी और टोलस्टॉय को पढ़नेवाले सत्यधन के मन में यह विचार उठता है कि उसे कट्टो का उद्धार करना चाहिए । उसका मन कट्टो के साथ है । परन्तु उसकी बुद्धि उसे गरिमा से विवाह सूत्र में बंधन के लिए प्रेरित करती है । उपन्यास का लगभग आधा हिस्सा सत्यधन के इस अंतर्द्वन्द्व को उकेरने में नियोजित हुआ है । इस पूरे प्रसंग में ऐसे अनेकों स्थान आते हैं जहाँ सत्यधन का मन घड़ी के पेण्डुलम की तरह इधर-उधर होता रहता है । कथा के इन अंशों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं ।

इसी उपन्यास में गरिमा के पिता जब अपनी सारी संपत्ति अपने पुत्र बिहारी के नाम कर देते हैं तब सत्यधन को इस बात का आघात लगता है। एक क्षण तो उसे ऐसा लगता है कि उसके नीचे की धरती सरक गई। बिहारी और कट्टो प्लेटोनिक (आत्मिक) प्रकार के परिणय सूत्र में बंध गए हैं। इस प्रकार कल तक की एक असहाय, गरीब, बालविधवा अब लाखों की संपत्ति की स्वामिनी हो गई है। गरिमा की सुख सुविधा के लिए कट्टो जब सत्यधन को एक बड़ी-सी रकम देती हे - उस समय सत्यधन के भीतर जो संघर्ष चलता है, स्वयं को कट्टो के सम्मुख वह बहुत छोटा समझता है। उपन्यास में इन क्षणों की परिगणना हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के रूप में कर सकते हैं।

जैनेन्द्र के दूसरे उपन्यास 'सुनीता' में सुनीता श्रीकान्त की पत्नी है। हरिप्रसन्न श्रीकान्त का मित्र है। क्रान्तिकारी दल का नेता है। प्रकटत: वह यह बताता हे कि स्त्री के लिए उसके मन में कोई आसक्ति नहीं है, परन्तु उसका भीतरी मन सुनीता को चाहता है। श्रीकान्त भी सुनीता को ढील देता है। श्रीकान्त चाहता है कि हरि के मन में जो ग्रंथि है वह सुनिता के द्वारा समाप्त हो जाए। वह उन दोनों को अकेले रहने का मौका भी देता है। हरिप्रसन्न सुनीता को क्रान्ति दल के लोगों को मिलाने के लिए शहर से दूर रात्रि के समय में एकान्त स्थान पर ले जाता है। हरिप्रसन्न शनै: शनै: अपने मन को सुनीता के आगे प्रकट करता है। सुनीता की देह पर अपने हाथ फेरना शुरू करता है। उस पर मानो नशा-सा चढ़ता जाता है। उस मनोवैज्ञानिक क्षण का निरूपण जैनेन्द्रजी ने बखूबी किया है। यथा, धीरे धीरे सुनिता ने आँखें खोली। नहीं, उसने आँखे नहीं खोली। यह अपने शरीर पर आहिस्ता-आहिस्ता फिरते हुए पुरुष के हाथ का स्पर्श अनुभव करने लगी, कुछ देर तो वह यों ही पड़ी रही। फिर आँख खोलकर मानो कूज कर उसने कहा 'हरिबाबू'। . . . हरिप्रसन्न अत्यंत अवश स्वर में कहा 'सुनीता'। और ऐसे देखा जैसे माफी चाहता है।

. . . 'तुम' क्या चाहते हो, हरि बाबू ? . . . . क्या चाहता हूँ ? तुम पूछोगी - क्या चाहता हूँ ? तो सुनो, तुमको चाहता हूँ, समूची तुमको चाहता हूँ । उसके बाद . . . . . तो मैं तो हूँ तुम्हारे सामने, ले क्यों नहीं लेते हो ? . . . . सुनीता ने कहा, 'मुझे चाहते हो हरि बाबू ? खूब सोच लो' सुनीता कहते-कहते उठ बैठी . . . . और कहकर सुनीता ने अपने देह का वस्त्र अलग करना शुरू किया । हरिप्रसन्न अचकचाया-सा बोला, 'भाभी' ! सुनिता की वाणी में न व्यंग्य मालूम हुआ, न झल्लाहट, उसने कहा, मुझे ही चाहते हो न ? मुझे लो . . . हरिप्रसन्न बेहद घबराकर बोला, 'भाभी' ? क्या चाहते हो हरिबाबू ? मुझे ही चाहते हो न, मैं नहीं हूँ ? मैं यह हूँ . . . और कहते-कहते साड़ी बिल्कुल अलग कर दी । . . . सुनिता बोली ''हरि मुझे लो, मुझे पाओ । इस एक आवरण को भी हटाए देती हूँ । वही मुझको ढक रहा है, मुझे चाहते हो न ? मैं इनकार नहीं करती, यह लो'' - इस पर . . . हरिप्रसन्न . . . भाभी . . . भाभी करता हुआ हाथ से आँखे मींचे मींचे उठा और मुँह फेरकर वहाँ से चल पडा, 'भाभी' बस । 'मुझे मारो मत, मारो मत' वह चलता चला, पास न रहा, दूर चला गया ।''[३]

यह समूचा वर्णन मनोवैज्ञानिक क्षण का निरूपण करने वाला है । इसमें लेखक ने सुनीता को लेकर हरिप्रसन्न के मन में जो आकर्षण और उहापोह है, उसे सांकेतिक एवं लाक्षणिक शैली में अभिव्यक्त किया है ।

भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' उपन्यास में रेखा भारद्वाज एक बीस वर्षीय युवती है । भावातिरेक में वह तिरपन (५३) साल के विद्वान प्रोफेसर डॉ. प्रभाशंकर से विवाह सूत्र में बंधती है, परन्तु भावुकता के दौर से गुजर जाने के पश्चात वह अनुभव करती है कि प्रभाशंकर उसकी यौनक्षुधा को तृप्त करने में असमर्थ है । रेखा रात-रात भर तड़पती रहती है । अत: उसका भाई जब

अमरीका से लौटता है तो रेखा का परिचय अपने भाई अरुण के मित्र सोमेश्वर दयाल से होता है । होटेल में सोमेश्वर दयाल जब रेखा को अपने बाहुपाश में लेता है, तब वह ऊपर-ऊपर से तो मना करती रहती है, परन्तु भीतर से वह उस पागल प्रवाह में बह जाती है । सोमेश्वर दयाल से मिलने के पश्चात रेखा के मन में एक अपराध-भाव विकसित होता है । वह मन ही मन सोचती है कि सोमेश्वर दयाल से अब वह नहीं मिलेगी परन्तु दूसरे दिन जब सोमेश्वर को दिए हुए समय का क्षण आता है तो रेखा के मन में एक भयंकर द्वन्द्व चलता है । उसके भीतर का 'Id' उसे प्रेरित करता है कि वह सोमेश्वर दयाल को मिले परन्तु 'ego' कहता है कि यह ठीक नहीं है । उसके जैसी संभ्रान्त महिला के लिए यह उचित नहीं है, तब रेखा का भीतरी मन एक दूसरा रास्ता ढूंढ निकालता है कि मैं दयाल को जाकर मिलूं और उसे खूब फटकारूं कि उसने मेरे सीधेपन का नाजायज फायदा उठाया । परन्तु रेखा जब सोमेश्वर को मिलती है तो अगला-पिछला सब भूल जाती है और फिर जातीय आकर्षण के भाव में खींच जाती है । रेखा के जीवन के ये क्षण मनोवैज्ञानिक क्षण हैं। जिसका चित्रण वर्माजी ने बहुत ही कलात्मक ढंग से किया है ।

जैनेन्द्रकुमार के ही उपन्यास 'व्यतीत' में जातीय अनुसंकोच (Sexual perversion) का एक उदाहरण मिलता है । जयंत एक प्रतिभाशाली युवक है । कोम्पिटीशन में बैठने वाला था परन्तु उन्हीं दिनों में उसकी प्रेमिका अनिता की शादी पूरी साहब से हो जाती है । फलत: जयंत कोम्पिटीशन में भी नहीं बैठता और पचहत्तर रूपये की नौकरी में अपनी प्रतिभा को झोंक देता है । जयंत आकर्षक एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का मालिक है । अत: युवतियाँ उसकी ओर बरबस आकर्षित होती हैं । अनिता के बाद किसी स्त्री का विचार ही जयंत ने छोड़ दिया था, परन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ पड़ती हैं कि चंद्री नामक एक युवति से उसे विवाह करना पड़ता है । वह चंद्री के साथ कश्मीर

हनीमून पर जाता है, परन्तु जातीय अनुसंकोच (Sexual perversion) के करण वह चंद्री के सम्मुख बिल्कुल बरफ की शिला हो जाता है । वह चंद्री की तरफ बढ़ ही नहीं सकता है । जब भी वह चंद्री को प्यार करने की सोचता है, अनिता उसके मस्तिष्क का कब्जा ले लेती है । हनीमून के सभी दिन लगभग समाप्त होने आये हैं । एक अंतिम रात बची है । यहाँ पर जयंत की मन:स्थितियों का जो चित्रण है उन्हें हम मनोवैज्ञानिक क्षण (Phychological moments) कह सकते हैं । इसका बडा ही सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक चित्रण जैनेन्द्रजी ने किया है । यथा - ''नहीं, मिटना आसान न था । सतह पर सतह का अंतराय था । नितांतता मेरे भीतर तक अस्वीकृत थी । नाना कारणों से मुझ पर नाना आवरण थे । जैसे थे वे और उनमें ही मैं था । कहीं किसी धवलता में घुलकर मैं अपने से रीत नहीं सकता था । फिर भी वहाँ रह ही गया । क्या आवरणों को पार कर चांदनी भीतर मुझे छू रहेगी और मैं गल जाऊँगा ? मैं न रहूंगा और इस चांदनी में से भाल उठकर चांद से हंसता और बात करता हिमालय रह जायगा ? क्या यह होगा ? पर मैं रह गया, बरफ कोट पर से झिटकी, खड़ा हो आया, और दो पैरों से डगडग चल कर डेरे में आ गया ।''[४]

मणिमधुकर द्वारा प्रणीत 'सफेद मेमने' उपन्यास में डॉ. भानमल के चरित्र का लेखक ने मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है । डॉ. भानमल मवेशियों का डॉक्टर है और जेसलमेर की मरूभूमि की दूर दराज की ढाणी में सरकारी मुलाजिम है । वह नितांत एकाकी है । पढ़े-लिखे लोगों के नाम पर गाँव का डाक बाबू है, जसू नामक एक डाकिया हे और वह खुद है । नितांत अकेले रहने के कारण उसमें जातीय तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है । ऐसी किसी कमजोर क्षण में वह अपने यहाँ की एक भैंस के साथ संभोग करता है । लेखक ने इस क्षण का बड़ा ही यथार्थ और नग्न चित्रण किया है । यथा - ''एकाएक उसके खून में चिनगारियाँ उबलने लगीं और कोई पुकाग-पुकार के कहने लगा,

'डूबो, डूबो ।'' डॉक्टर सात नम्बर की कोठरी में घुस गया । डॉक्टर ने उसे (भैंस को) सहलाया, थूदी पर थपकी दी । वह धीमे से अरड़ाकर बैठ गयी और जमीन पर गर्दन तानकर सुस्ताने लगी । डॉक्टर की जाँघों के बीच का हिस्सा कड़ा पड़ने लगा। पिंडलियों में कंपकंपी दौड़ने लगी । उसने पेंट के बटन खोले और जल्दी से भैंस की पुट्ठों को बचाकर बैठ गया । ढीली पूंछ ऊपर उठा दी । गोबर की बू सांस में भर गयी । पर वह उसे बुरी नहीं लगी । एक गिला-गिला आवरण चारों तरफ से उतर आया और वह हाँफता हुआ उसमें पूरी तरह गुम होने लगा । व्यर्थ, सब कुछ व्यर्थ । सच 'सिर्फ' यही एक क्षण है । उसने रगों के तनाव को, ताप को अन्दर डूबोते हुए पाया । भैंस शान्त थी । उसकी उत्तेजना गिर रही थी, शायद । डॉक्टर का ज्वार ठंडा पड़ गया । वह कृतज्ञ भाव से भैंस की पीठ थपथपा कर उठा । पेंट के बटन बन्द करता हुआ अपनी कोठरी की तरफ चल पडा । कोठरी के सामने एक आदमी खड़ा था । डॉक्टर सहम गया । चुपचाप कोठरी के ताले में चाबी घुमाने लगा ।''[५]

संक्षेप में उन प्रसंगों को मनोवैज्ञानिक क्षण कहते हैं, जिनमें कोई पात्र विशेष मानसिक अंतर्द्वन्द्वों से गुजरता है । मानसिक ग्रंथियों के वशीभूत होकर किसी कार्य की ओर अग्रसरित होता है या फिर जिनमें व्यक्ति के अचेतन मन (Unconscious mind) में स्थित Id और ego के बीच घमासान संघर्ष चलता है ।

२:०२:०१ मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ

सामान्यतया हम ऐसा मानते हैं कि जीवन में बहुत सी घटनाएँ घटित होती हैं और उनमें से कई बातों का विस्मरण हो जाता है । परन्तु यह मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है । मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य जिन घटनाओं और प्रसंगों से गुजरता हे उनका कोई न कोई

प्रभाव उसके अचेतन और अवचेतन मन में रह जाता है । चेतनमन पाटी (स्लेट) जैसा है । पाटी में हम लिखते हैं और मिटाते हैं । चेतन मन में भी ऐसा ही होता है । हम नई चीजों को, नई बातों को, नई घटनाओं को याद रखते हैं और पुरानी बातें, घटनाओं को अपने स्मृति पटल से मिटाने चलते हैं । परन्तु अचेतन या अवचेतन मन का ऐसा नहीं है । उनमें जो एक बार दर्ज हो जाता है वह सदा-सदा के लिए अपना स्थान बना लेता है और कभी समय आने पर अचानक प्रस्फुटित होता है । मन के जिस हिस्से में यह सब एकत्रित होता है उसे Libido नाम दिया गया है । मन में जो कुछ भी अच्छा बुरा संग्रहीत होता है उसे बाहर प्रस्फुटित होने का मौका यदि नहीं मिलता है तो मन में एक गाँठ-सी पड जाती है । मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली में इसी गांठ को ग्रंथि (Complex) कहा गया है । मनुष्य का मन बड़ा चंचल है । वह बहुत कुछ करना चाहता है, बहुत कुछ पाना चाहता है, परन्तु मनुष्य अपने मन के अनुसार नहीं चल सकता । उसके सामने घर-परिवार है, समाज है, समाज की मान्यताएँ हैं, सभ्यता और संस्कृति के तकादे हैं, समाज में रूढ़, नैतिकता-अनैतिकता के ख्याल हैं । इन सबके वशीभूत होकर मनुष्य को घुंटकर रह जाना पड़ता है । कामनाओं और वासनाओं का दमन करना पड़ता है । मनुष्य की ये दमित वासनाएँ Libido में अपना अड्डा जमाती हैं । यदि एक लम्बे समय तक इन दमित वासनाओं को निष्कासन का क ोई मार्ग नहीं मिलता तो यह दमित वासनाएँ ग्रंथियों का रूप धारण कर लेती हैं ।

कई बार जीवन में कोई आघात जनक घटना, अप्रत्याशित घटना घटित होती है और तब उस बात को लेकर मनुष्य के मन में किसी ग्रंथि का निर्माण हो जाता है । अखा, नरसिंह, तुलसीदास, सूरदास आदि भक्त कवियों में जो वैराग्य भावना मिलती है, उसके पीछे इस प्रकार की कोई न कोई ग्रंथि कारणभूत रही है । राजकमल चौधरी कृत उपन्यास 'मछली मरी हुई' में उसके

नायक निर्मल पद्मावत को शैशवकाल में ही उसकी माँ बेघर करके चली गई थी। निर्मल के पिता की मृत्यु के उपरांत उसकी माँ पैतृक संपत्ति में प्राप्त मकान को बेच-बाचकर एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग जाती है। बालक पद्मावत दर-दर की ठोकरें खाता हुआ जीवन के विश्व विद्यालय से अनुभवों के पाठों को पढ़ता जाता है। बचपन में माँ ने उससे उसका घर छीन लिया, उसको घर से बेघर कर दिया यह बात उसके दिलो-दिमाग पर बुरी तरह से चस्पाँ हो जाती है। अत: बाद में जब उसके पास खूब सारी दौलत आती है तब कलकत्ते में 'कल्याणी मेनसन' नामक एक तीस मंजिला स्काय स्क्रैपर का निर्माण वह करता है। निर्मल पद्मावत के इस कार्य के पीछे बचपन में बेघर हो जाने की जो गांठ थी वही मुख्य है।[६]

ऊपर जिन दमित वासनाओं का जिक्र किया गया है उन दमित वासनाओं से मनुष्य में कई कुंठाएँ पैदा होती हैं। ये कुंठाएँ अलग-अलग प्रकार की होती है, उदाहरणतया जातिगत कुंठा, अर्थगत कुंठा, लिंगगत कुंठा, पदगत कुंठा, काम कुंठा आदि-आदि। जातिगत कुंठा उसे कहते हैं जहाँ किसी व्यक्ति को निम्न जाति में पैदा होने के कारण अपमानों और अत्याचारों से गुजरना पड़ता है। 'धरती धन न अपना' (जगदीशचंद्र) तथा 'आदमी और जानवर' (डॉ. जवाहरसिंह) के नायक क्रमश: काली और धनराज में यह जातिगत कुंठा पाई जाती है। अर्थगत कुंठा उसे कहते हैं जहाँ किसी व्यक्ति को दरिद्रता के कारण अपमानित होना पडता है। 'मछली मरी हुई' के निर्मल पद्मावत में यह अर्थगत कुंठा भी है। जब किसी लड़की को लड़की होने के कारण अपमानित होना पड़ता है तब उसमें लिंगगत कुंठा का जन्म होता है। ऐसी लड़की लड़की होते हुए भी लड़के का-सा व्यवहार करती है। जो लोग उच्च जाति के होते हुए भी छोटे पदों पर कार्य करते हैं, या उन्हें किसी निम्न वर्ग के व्यक्ति के अंतर्गत काम करना पड़ता है तब उनमें पदगत कुंठा का जन्म होता है। डॉ. बाबा साहब

आंबेडकर जब सर सयाजीराय गायकवाड के राज्य में ऊँचे पद पर काम करते थे तो उनके नीचे कार्य करनेवाले सवर्ण लोग नाना प्रकार से उनको अपमानित करने का प्रयत्न करते थे। उनके ऐसे व्यवहार के पीछे पदगत कुंठा कार्य करती थी। जातीय जीवन में कोई विक्षेप या बाधा आती है तो उससे कामकुंठा का जन्म होता है। 'मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत तथा 'रेखा' उपन्यास के डॉ. प्रभाशंकर इस काम कुंठा के शिकार भी हैं।

ऊपर निर्दिष्ट कुंठाओं से मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का निर्माण होता है। जातिगत, अर्थगत, पदगत, लिंगगत, कुंठाओं से लघुत्व ग्रंथि का तथा प्रभुत्व ग्रंथि का निर्माण होता है तो काम कुंठाओं से भी अनेकानेक प्रकार की कामजनित ग्रंथियों का निर्माण होता है।

२:०२:२ लघुता ग्रंथि (Inferiority Complex)

प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की कमी या क्षति होती है। उस कमी या क्षति को मिटाने के लिए वह भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु इस कमी का अहसास जब बहुत ज्यादा हो जाता है और व्यक्ति के मन पर बहुत समय तक जब उसका कब्जा रहता है तो उसमें लघुताग्रंथि का जन्म होता है। इस लघुता ग्रंथि के कारण उस व्यक्ति का व्यवहार सामान्य नहीं रह पाता है। लघुताग्रंथि को 'एहसासे कमतरी' भी कहते हैं। यह ग्रंथि मुख्यतया व्यक्ति के अचेतन में तीन कारणों से विकसित होती है - (अ) कामकुंठा, (ब) अर्थ कुंठा (क) जातिगत कुंठा।

(अ) काम कुंठा

व्यक्ति की कामवासना की पूर्ति यदि स्वस्थ ढंग से नहीं होती तो उसमें कामकुंठा का जन्म होता है। हृदयेश कृत 'एक कहानी अंतहीन' की चंद्रकला

का विवाह नहीं हो रहा है । अत: कामकुंठा के कारण उसमें लघुता ग्रंथि का निर्माण होता है और उसका व्यवहार असाधारण हो जाता है । वह खिड़की के पास खड़ी रहती है और आते जाते युवकों के साथ काल्पनिक धरातल पर शारीरिक संबंधो को जोड़ती है । स्नान कराने के बहाने वह अपने छोटे भाई की फुन्नी (जननेन्द्रिय) को भी छूती है । 'अनदेखे अनजान पुल' (राजेन्द्र यादव) की निन्नी काली कलूटी और कुरूप है । अत: उसका भी विवाह नहीं हो रहा है । इस कारण उसमें काम कुंठा जनित लघुता ग्रंथी निर्मित होती है, जिसके फलस्वरूप वह जानबूझकर भीड़-भडक्के वाले स्थानों पर जाती है ताकि पुरुष स्पर्श का आनंद प्राप्त किया जा सके ।

(ब) अर्थ कुंठा

अर्थ के अभाव में व्यक्ति में अर्थ कुंठा का उद्‌भव होता है । मध्यवर्ग या निम्न मध्य वर्ग के लोगों में जो प्रदर्शनवृत्ति पायी जाती हे उसका मूल इस अर्थ कुंठा में है । आज हमारे मध्यवर्गीय समाज में फ्रीज, टी. वी., वी.सी.आर., फ्लेट आदि चीजें 'स्टेटस सिम्बोल' होती जा रही हैं । जिनके यहाँ प्रथम बार ये चीजें आती हैं, वे घुमा-फिराकर इन चीजों का उल्लेख किसी न किसी रूप में करते हैं । मध्यवर्गीय आदमी कभी यदि हवाई जहाज से यात्रा करेगा तो अपनी बातों में 'बाय एर' जाने की बात वह किसी-न-किसी रूप में करेगा । 'टूटता हुआ आदमी का' धर्मनाथ जब शहर से घर आता है तब तो स्टेशन से गाँव जाने के लिए वह घोड़ागाड़ी की तलाश करता है । वैसे गाँव 'वोकिंग डिस्टन्स' पर ही था । और सामान भी ज्यादा नहीं था पर गाँव वालों के समक्ष वह अपनी संपन्नता का प्रदर्शन करना चाहता है । उसके इस व्यवहार के पीछे अर्थ कुंठा से उत्पन्न लघुता ग्रंथि ही मुख्य रूप से जवाबदेह है । मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' का पत्रकार मधुसुदन जब सुषमा श्रीवास्तव को

लेकर महंगे होटल में जाता है, तब सुषमा को प्रभावित करने के लिए वह जान बूझकर कुछ अपरिचित डिशो का ऑर्डर दे देता है । डॉ. देवराज के उपन्यास 'भीतर का घाव' का नायक कॉलेज में पढ़ता है और निम्न मध्य वर्ग का है । पैसों की कमी के कारण उसमें लघुता ग्रंथि का भाव विकसित होता है । कॉलेज में एक दो लड़कियों के प्रति उसके मन में आकर्षण का भाव है । एक दिन मौका देखकर वह उन्हें केन्टिन में ले जाता है, पर अचानक उसका संपन्न मित्र आ धमकता है । उसे देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गूम हो जाती है । 'मेनू' तय करने से लेकर बिल चुकाने तक के सारे मामलों में वह बाजी मार ले जाता है । नायक बेचारा खिसियाना-सा रह जाता है । आर्थिक पिछड़ेपन के कारण वह अपने संपन्न मित्र के सामने दब-सा जाता है और खुलकर व्यवहार नहीं कर पाता ।

(क) जातिगत कुंठा

निम्न और दलित जाति के लोगों में प्राय: यह कुंठा पायी जाती है । पंड्या को पंड्या या पाठक को पाठक कहने से उसे अपमान होता हुआ नहीं लगता परन्तु किसी चमार या हरिजन को चमार या हरिजन कहते हैं तो वह अपमानित महसूस करते हैं । ग्रामिण परिवेश के अशिक्षित लोगों में यह कुंठा फिर भी कम होती है, परन्तु शहरी परिवेश के निम्न जाति के शिक्षित तवकों में यह कुंठा विशेष रूप से पायी जाती है । 'धरती धन न अपना' (जगदीशचंद्र) का नायक काली चमार है । वह कई वर्षों तक शहर में रहकर आया है । अत: उसे कोई चमार या चमारा कहता है तो उसके तन-बदन में आग लग जाती है । इस जातिगत कुंठा के कारण ही काली पक्का मकान बनवाने का विचार करता है । वह शहर से कुछ रूपये कमाकर लाया है । कोई दूसरा व्यक्ति होता तो इन रूपयों से और रूपये कमाने की सोचता । सैंकड़ोंपति से हजारपति और

हजारपति से लखपति बनने का विचार करता । परन्तु काली अपनी जमा पूंजी मकान बनवाने में खर्च कर डालता है । और कुछ ही समय में वह पुन: खेत मजदूर हो जाता है । गाँव के चौधरियों को दिखा देने के लिए वह पक्का मकान बनवाता है । वस्तुत: उसके इस कार्य के पीछे लघुताग्रंथि ही कारणभूत है ।

इस प्रकार कुंठाओं से ग्रस्त तथा लघुताग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति असाधारण हो जाता है और उसके अनेक कार्य-कलापों में उसका व्यवहार जो कभी-कभी असाधारण-सा हो जाता हे, उसके पीछे यही लघुता ग्रंथि काम करती है ।

२:०२:०३ प्रभुत्व ग्रंथि : (**Superiority Complex**)

यह ग्रंथि लघुताग्रंथि का विलोम है । इस ग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ मानता है । अपने सामने वह दूसरों को नगण्य समझता है । यह ग्रंथि प्राय: राजा-महाराजाओं, नवाबों, जमींदारों तथा बड़े लोगों में पायी जाती है । जिसे सामान्य तौर पर 'रोयल' कहा जाता है । ऐसे लोगों में यह ग्रंथि विशेष रूप से पायी जाती है । स्त्रियों में यदि कोई स्त्री असाधारण रूप से सुंदर होती है और उस सुंदरता के कारण यदि वह उच्च स्थान प्राप्त करती है तो उसमें असंदिग्धतया प्रभुत्वग्रंथि या श्रेष्ठत्व का निर्माण होता है। नूरजहाँ, लेडी डायेना, एलिजाबेथ टेलर, केथेरीन ध ग्रेट आदि महिलाओं में यह ग्रंथि पायी जाती है ।[७] यदि कोई असाधारण सौंदर्य-सम्पन्न महिला अपने मनोनुकूल पद को प्राप्त करने में असफल होती है तो उसमें फिर लघुताग्रंथि का निर्माण हो सकता है । असाधारण बुद्धि सम्पन्न लोगों में भी यह ग्रंथि पागी जाती है । एक और तरीके से भी प्रभुत्वग्रंथि विकसित होती है । किसी प्रकार की कुंठा से ग्रस्त व्यक्ति यदि उस कुंठा पर विजय प्राप्त कर ले तो उसमें भी प्रभुत्व ग्रंथि का निर्माण हो सकता है । भक्तिकाल के कवियों में कबीर में जो प्रभुत्वग्रंथि मिलती है उसका यही कारण है । कदाचित इसीलिए जहाँ तुलसी कहते हैं 'सत्य कहौं

लिखि कागत कोरे' वहाँ कबीर कहते हैं 'जस की तस धर दीनि चदरिया'। गोदान के राय साहब 'धरती धन न अपना' के हरनाम चौधरी तथा जुलूस के तालेवर गोड़ी हमें यह प्रभुत्व ग्रंथि के दर्शन होते हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' की नीलिमा 'आपका बंदी' की शकुन, 'मुक्तिबोध' की नीलिमा, 'रूकोगी नहीं राधिका' की राधिका तथा 'टेराकोटा' की मिति में भी हमें प्रभुत्वग्रंथि दृष्टिगोचर होती है।

२:०२:०४ बद्वत्व ग्रंथि (Complex of Fixation)

सामान्य तौर पर जीवन में व्यक्ति अपने सामने किसी न किसी आदर्श (जिसे वह आदर्श समझता है) व्यक्ति की मूर्ति को धारण करता है। साधारणतया शैशवावस्था में या किशोरावस्था में लड़का या लड़की अपने माँ-बाप को आदर्श रूप में देखते हैं। फलत: वे प्राय: उनका अनुकरण और अनुसरण करते हैं। वे उनको आदर्श की मूर्ति मानते हैं। यह मान्यता यदि एक सीमा तक रहती है तब तो ठीक है, परन्तु यदि उसका अतिरेक हो जाता है तब फिर बद्धत्वग्रंथि का निर्माण होता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी माँ को आदर्श नारी मानता है तो वह हर स्थान पर हर व्यक्ति से यही प्रदर्शित करता है कि दुनिया में उसकी माँ जैसी कोई माँ नहीं है। जब भी उसके जीवन में कोई स्त्री आती है तो वह उसकी तुलना अपनी माँ से करता है और उसमें भी वह तटस्थ या निरपेक्ष नहीं रह पाता। बध्धत्वग्रंथि के कारण वह अपनी माँ को ही श्रेष्ठ मानता है। ऐसे व्यक्ति के लिए गुजराती भाषा में 'मावडिया' शब्द प्रयुक्त होता है। उसकी यह आदर्श भक्ति तब तक तो हानिकारक नहीं होती जब तक उसकी जिंदगी में किसी दूसरी स्त्री का प्रवेश नहीं होता। परन्तु जब विवाह करता है और एक दूसरी स्त्री उसके जीवन में आती है तब फिर यह बध्धत्वग्रंथि उसके जीवन में अनेक समस्याओं को पैदा करती है और उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रह

पाता । नरोत्तम नागर कृत 'दिन के तारे' का नायक मातृबध्धत्व ग्रंथि (Mother Fixation) से पीड़ित है और उसी कारण उनका दाम्पत्य जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है ।[८]

माता पिता के अतिरिक्त अन्य किसी स्नेही-संबंधी का, किसी साहित्यकार का, कलाकार का, अभिनेता या अभिनेत्री का किसी खिलाड़ी का भी बद्धत्व हो सकता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति जिसका बद्धत्व होता है उसे अपना आदर्श मानकर चलता है और उसका अनुसरण करने की, उसके अनुसार व्यवहार करने की कोशिश करता है । 'रूकोगी नहीं राधिका' की राधिका को अपने पिता का बद्धत्व हे । भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' उपन्यास की रेखा को अपने प्रोफेसर के प्रति बद्धत्व होता है । बद्धत्व ग्रंथि में मातापिता को छोडकर अन्य किसी के प्रति बद्धत्व हो तो वह सामाजिक दृष्टि से उतना हानिकारक नहीं होता परन्तु किन्हीं कारणों से जिसके प्रति बद्धत्व भाव होता है उसकी वह आदर्श मूर्ति (Image) खंडित होती है तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी भयंकर होती है और तब व्यक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असाधारण (abnormal) व्यवहार करने लगता है । उसमें व्यक्ति कभी-कभी विक्षिप्त या पागल भी हो सकता है ।

२:०२:०५ इलेक्ट्रा काम्पलेक्स (Electra Complex)

मनोवैज्ञानिक फ्र ायड के मतानुसार मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों का उत्स कामभावना (Sex) है । फ्रायड स्त्री और पुरुष के बीच तीव्र काम-भावना की बात करता है । उसका कहना है कि सामाजिक प्रतिबंधो और नीति-नियमों तथा Social Taboos के कारण व्यक्ति के चेतन मन पर एक प्रकार की सेन्सरशीप (Censership) रहती है । परन्तु उसके अचेतन मन (Unconscious mind) में तो विरोधी लिंग के लिए अदम्य आकर्षण रहता ही है । भाई-बहन,

पुत्र-माता, पिता-पुत्री जैसे संबंधो में भी यह आकर्षण अज्ञात रूप से रहता है। फलत: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पुत्र माता के प्रति और पुत्री पिता के प्रति अधिक झुकती है। फ्रायड पिता-पुत्री के संबंध में भी काम-वासना को ही केन्द्र में मानता है। अत: पुत्री का लगाव पिता के प्रति अधिक रहता है। परन्तु किन्हीं कारणों से यदि यह भाव तिरोहित होता है और यदि पुत्री पिता को घृणा, वितृष्णा या नापसंद करने लगती है तब उसमे जो ग्रंथि पैदा होती है उसे इलेक्ट्रा काम्पलेक्स कहते हैं।[९] उषा प्रियंवदा द्वारा प्रणीत उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' की नायिका राधिका अपने पिता को अत्यधिक चाहती है। उसे वह दुनिया का आदर्श पुरुष मानती है, आदर्श पिता मानती है, और फलत: उनके प्रत्येक कार्य में उनको बहुत सहकार देती है। परन्तु वही पिता जब विद्या नामक एक दूसरी सहकार्यकर प्राध्यापिका से विवाह कर लेते हैं तब राधिका के मन में बैठी हुई वह आदर्श पिता की मूर्ति खंडित होती है और उसमें इलेक्ट्रा काम्पलेक्ष पैदा होती है। उसके कारण वह किसी-न-किसी रूप में अपने पिता को आघात देना चाहती है। पिता को आघात देने के लिए ही वह अमरीकी पत्रकार डेनियल पीटरसन के साथ भाग जाती है। राधिका और डेनियल पीटरसन का दाम्पत्य जीवन भी सुखरूप नहीं बीतता है, क्योंकि राधिका ने यह निर्णय अपने स्वस्थ मन से नहीं लिया था। डेनियल से विवाह करने के पीछे और उसके साथ अमरीका भाग जाने के पीछे अपने पिता को मानसिक त्रास देने की भावना ही कार्य करती है। जो इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्ष के कारण है। उपन्यास में एक स्थान पर डेनियल पीटरसन राधिका के मन का विश्लेषण करते हुए कहता है - "राधिका, तुमने कभी, एक क्षण के लिए भी, मुझे प्यार नहीं किया। राधिका तुम मुझमें अपना पिता ढूंढ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आई थी।"[१०] राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' की शिरीं महेता अपने पिता के प्रति आकृष्ट थी, परन्तु प्रसूति के दौरान उसकी माता का देहान्त हो जाने से उसकी बड़ी बहन उसे अपने पिता के

विरूद्ध भड़काती है । वही बहन शिरीं के मन में यह बात पूरी तरह से बिठा देती है कि माँ की मृत्यु पिता के कारण ही हुई । फलत: शिरीं में इलेक्ट्रा काम्पलेक्ष के कारण पुरुष मात्र के प्रति घृणा का भाव पैदा हो जाता है । बड़ी बहन यह कार्य अपने स्वार्थ के लिए करती है । लिस्बियन होने के कारण वह अपनी छोटी बहन का प्यार पाना चाहती है, इसलिए छोटी बहन में कभी किसी पुरुष के लिए आकर्षण पैदा न हो इसलिए वह उसमें इलेक्ट्रा कोम्पलेक्ष का भाव पैदा कर देती है और उसे पुरुष मात्र के प्रति विमुख कर देती है ।

२:०२:०६ इडीपस कॉम्पलेक्स (Idipus Complex)

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कामजनित भावना के कारण विरोधी लिंगों में आकर्षण रहता है । इसके कारण ही पुत्र का झुकाव पिता की अपेक्षा माता की ओर अधिक रहता है । यदि पुत्र माता को अधिक चाहता है तो उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टया ठीक ही समझा जाएगा । उसके विकास को साधारण (Normal) समझा जाएगा । परन्तु किन्हीं कारणों से यदि यह भाव तिरोहित होता है तो जो ग्रंथि विकसित होती है उसे इडीपस कोम्पलेक्स कहते हैं ।

यदि कोई पुत्र अपनी माँ को बेइन्तिहां चाहता है, परन्तु यदि वह अपनी माँ को किसी पर पुरुष की बाहों में देख लें तो वह न केवल अपनी माँ से, अपितु समूची स्त्री जाति से वितृष्णा करने लगता है । तब उसमें जो ग्रंथि विकसित होती है उसे इडीपस कोम्पलेक्स कहते हैं । 'प्रेत और छाया' उपन्यास का नायक पारसनाथ अपनी माँ को चाहता है । माता-पिता में विवाह विच्छेद हो गया है । पारसनाथ पिता के पास रहता है । परन्तु उसे माता की खूब याद आती है । अत: उसका पिता पारसनाथ के कोमल मस्तिष्क में यह बात बिठा देता है कि उसकी माँ एक बदचलन औरत थी और वह (पारसनाथ) उसकी नाजायज संतान है । पिता की इस बात के कारण पारसनाथ में Idipus

Complex पैदा होती है और युवा होने पर वह गलत रास्तों पर चल पड़ता है। वह अनेक स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है। उसको स्त्री जाति से ही नफ़रत हो जाती है। और उसके कारण स्त्रियों को अपने जाल में फँसाकर वह इन्तकाम लेता है। यह स्थिति पांडे बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास 'बुधवा की बेटी' से बिल्कुल विलोम पर है। वहाँ बुधवा की बेटी रधिया पुरुष जाति से बदला लेने के लिए उनको अपने मोहजाल में फँसाकर बीच में छोड़ देती है। और इस प्रकार वह अपने पुरुषों को पागल बना देती है। बहुत वर्षों बाद जब पारसनाथ को सही परिस्थिति का पता चलता है तब उसे बहुत पश्चाताप होता है। उसकी वह ग्रंथि समाप्त हो जाती है और वह वह साधारण (Normal) मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगता है।

'मछली मरी हुई' के निर्मल पद्मावत में भी यह ग्रंथि विकसित होती है क्योंकि उसकी माँ एक ट्रक ड्राईवर के साथ भाग जाती है। इस ग्रंथि के कारण वह स्त्रियों के साथ सामान्य (Normal) व्यवहार नहीं कर पाता है। उसकी नपुंसकता के पीछे भी शायद यही कारण है।

गुलशेरखान शानी के उपन्यास 'कालाजल' का रोशन अपनी माँ बिदारोगिन को खूब चाहता है। परन्तु उसके अब्बा की मृत्यु के बाद जब बिदारोगिन रज्जूमियाँ से निकाह कर लेती है, तब रोशन का प्रेम का वह भाव घृणा में बदल जाता है। इस घृणा के कारण रोशन का व्यवहार बदल जाता है।

मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' का बंटी अपनी माँ शकुन को बहुत ही ज्यादा चाहता है। वह शकुन से एक दिन भी अलग नहीं रह सकता, दिन में आया के साथ रहता है, परन्तु रात में वह शकुन के साथ ही सोता है। अजय और शकुन में विवाह विच्छेद हो गया है और बंटी शकुन के साथ रहता है। कालान्तर में जब शकुन डॉ. जोशी से पुनर्विवाह कर लेती है, तब इस नयी

परिस्थिति और अनुभव को बंटी पचा नहीं पाता है । उसमें तब Idipus Complex का निर्माण होता है । लेखिका ने इस प्रसंग का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है - "ये उसी की ममी है, उसने आज तक कभी अपनी ममी को ऐसा नहीं देखा । उसकी ममी ऐसी हो ही नहीं सकती । यह क्या हो रहा है ।..... छी-छी - बेशरम । बेशरम । सारे गुस्से, नाराजगी और दु:ख के बावजूद अभी तक ममी उसकी ममी थी, अब जाने क्या हो गई । पता नहीं उसे कुछ भी नाम देना नहीं आ रहा है । बस इतना लग रहा है कि अभी तक की ममी एकाएक ही जैसे कहीं से टूट-फूट गई . . . . चकनाचूर हो गई ।"[११]

यहाँ बंटी में लेखिका ने Idipus Complex की प्रारंभिक स्थिति को बताया है । बंटी बड़ा होकर 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ भी बन सकता है और 'मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत भी ।

२:०२:०७ सादवादी ग्रंथि (**Sadist Complex**)

इसे हम कोई एक स्वतंत्र ग्रंथि न कहकर अनेक ग्रंथियों के परिणामस्वरूप उद्‌भवित होने वाली ग्रंथि कह सकते हैं । जो व्यक्ति इस ग्रंथि से पीड़ित होता है, उसे दूसरे लोगों को पीडा देने में आनंदानुभूति होती है । दूसरे शब्दों में हम इसे परपीड़क व्यक्ति कह सकते हैं । मनोवैज्ञानिक दृष्टया तथा प्रकृत्या पुरुष थोड़ा-बहुत परपीड़क वृत्ति का होता हे और स्त्री थोड़ी-बहुत आत्मपीड़क प्रकृति की होती है । परन्तु उसका जब अतिरेक होता है, तब उसे ग्रंथिग्रस्त माना जाएगा । थोडी बहुत परपीड़क वृत्ति पुरुष में होती है, इसे उसका दुर्गुण नहीं, अपितु गुण समझा जाता है । स्त्री में एक आदिम अंतर्वृत्ति (Instinct) होती है, जिसके कारण वह पुरुष द्वारा थोड़ी पीड़ा पाने में आनंद का अनुभव करती है । बहुत सी आदिम जातियों में स्त्रियाँ चाहती हैं कि कभी-कभार पति द्वारा उनकी थोड़ी बहुत पिटाई होती रहे । यदि कोई पति ऐसा नहीं करता है तो

वे उसे 'मोरिया' कहती हैं, और नापसन्द करती हैं। पाश्चात्य काम-मनोवैज्ञानिकों ने (Sexiologists) अब इस तथ्य को अंगीकृत कर लिया हे और अपने काम शास्त्रीय ग्रंथों में बोण्डेज (Bondage) के प्रकरण को जोड़ दिया है। इस थ्यौरी के अनुसार जब तक स्त्री को थोड़ा बहुत पीड़ित न किया जाए तब तक उसे सेक्स में तीव्र आनंदानुभूति (Ejaculation) का अनुभव नहीं हो सकता। अत: वहाँ के कामशास्त्र के ग्रंथों में रतिक्रीडा के समय स्त्री को पीड़ित करने के नाना तरीकों पर पूरा एक अध्याय दिया गया है। इस संदर्भ में इंगे तथा स्टेन हेगेलर लिखते हैं - "(Bondage) is a sexual excitement at being dominated or subdued by someone else - Physically or metaphorically quite a few men and women are excited sexually by the idea of being somebody's slave; we have all met individuals who, if they do not act this out in their sex life, do so at the social level by being devoted to a partner who treats them as a dogs body. The frankly sexual form - in the woman, of wanting to be possessed, ravished or roughly handled; In the men, of wanting a dominant woman who will enslave him - is if anything, to our mind less mischievous then the (unrecognized) social equivalent. Both can be disabilitis. . . . . many quite normally sexed games, to tussle, pritend to rape or beat each other, tie-each other up, of play at slaves. Partly to satisfy such impulses in themselves and partly because they find struggle and exertion physically esciting."[१२]

सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक एवं जातीय जीवन वैज्ञानिक डॉ. एस. जे. टफील (S. J. Tuffill) स्त्री पुरुष के जातीय जीवन में Bondage को महत्वपूर्ण बताते हुए उसके संदर्भ में टिप्पणी देते हैं -"The essential feature of

bondage is the inability to escape, to resist the aggressor - to have to submit whether one wants to or not. In very many cases this submission will be fantasy and not actual fact, but the stimulation felt by the imagined situation will be just as vivid. This desire to overcome and control one's victim by straps and chains, ropes and cords is very often not associated with any conscious element of real sadism. the aggressar wants the victim completely at his or her mercy although this may be symbolic as where actual words or straps are used and yet it would be a trivial task for the victim to free himself or herself."[१३]

प्रसिद्ध कामशास्त्री हेवलोक ऐलिस bondage की इच्छा को आदिम जातीय वृत्ति के अवशेष के रूप में देखते हैं । यथा - "As Havelock Ellis has pointed out, the exercising of his power over a woman is a survival of the primitive courtship carried out by man the hunter and must be considered as basic to his sexual interest."[१४]

वात्स्यायन कामसूत्र में Bondage को एक अलग महत्व न देते हुए संवनन की अनेक क्रियाओं में उसे अंतर्ग्रथित कर लिया है । जैसे चुंबन और आलिंगन की अनेक प्रकारों में दंतक्षत, नखक्षत और उसके भेद्रोपभेदों की चर्चा की गई है । वात्स्यायन कामसूत्र के सांप्रयोगिक अधिकरण में अध्याय-४ और अध्याय ५ क्रमशः नखक्षत और दंतक्षत पर दिए गए हैं । चिन्हों के अनुसार नखक्षत के आठ प्रकार बताये गए है - आच्छुरितक, अर्धचन्द्र, मण्डल, रेखा, व्याघ्रनख, मयूरपदक, शशप्लुतक और उत्थलपत्रक ।[१५] नखक्षत में Bondage की Treatment किस प्रकार की होता है उसका ख्याल तो 'मयूरपदक' नामक

नख-क्षत के प्रकार से भलिभांति ज्ञात होता है। 'मयूरपदक' के संदर्भ में कहा गया है - "पञ्चभिरभिमुखैर्लेखाचुचुकाभिमुखी मयूरपदकम् ॥" अर्थात् पाँचों नाखूनों से स्तन की घूंडी को पकड़कर अपनी ओर खींचने से स्तन के चारों ओर जो रेखाएँ बन जाती है वे मयूरपदक कहलाती है।[१६]

उपर्युक्त हेवलोक ऐलिस के कथन में जो कहा गया है उसकी प्रतीति भी हमें यहाँ होती हे, जहाँ वात्स्यायन मुनि ने गौड जाति के लोगों के संदर्भ में उल्लेख किया है। यथा "दीर्घाणि हस्तशोभीन्यालोके च योषितां चित्तग्राहीणि गौडानां नखानि स्युः ॥" अर्थात् गौड (उत्तरबंग) देशवासियों के लम्बे नाखून हाथ की शोभा माने जाते हैं। ऐसे नाखूनों को देखकर गौड-युवतियों का मन उनकी ओर खिंच जाया करता है।[१७]

अभिप्राय यह कि पाश्चात्य कामशास्त्रियों ने जिसे Bondage के रूप में प्रस्तुत किया है हमारे यहाँ कामशास्त्र के उपर्युक्त अध्यायों में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चर्चा है।

इस समूचे विवेचन का अभिप्राय यह है कि स्त्री-पुरुष के जातीय जीवन में परपीड़कता की प्रवृत्ति तो थोड़ी बहुत रहती ही है, परन्तु उसे ग्रंथि तब माना जाएगा जब यह परपीड़कता की वृत्ति का अतिरेक हो जाता है। ऐसा व्यक्ति केवल जातीय जीवन में ही नहीं, अपितु दूसरे प्रसंगों में भी प्रतिपक्षी को पीड़ित करके आनन्द की अनुभूति करता है। दूसरे Bondage में जो परपीड़कता की वृत्ति है वह केवल स्त्री पुरुष के जातीय संबंधों तक मर्यादित है, परन्तु परपीड़कता की ग्रंथि में तो उस ग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को, और किसी भी प्रसंग में पीड़ित करने का आदी हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन में निर्दिष्ट किया गया है कि प्रकृति से पुरुष थोड़ा परपीड़क वृत्ति का होता है। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि स्त्री परपीड़क नहीं

हो सकती। स्त्री या पुरुष उभय में से किसी में भी परपीड़कता का जब अतिरेक हो जाता है तब उस वृत्ति की परिगणना सादवादी ग्रंथि (Sadist Complex) के अंतर्गत की जा सकती है। 'उग्र' द्वारा प्रणित उपन्यास 'बुधवा की बेटी' की रधिया को पुरुषों को अपने मोह जाल में फंसाकर तड़पाने में एक विशिष्ट प्रकार का आनंद आता है। रधिया की इस ग्रंथि को हम Sadist की कोटि में रख सकते है। ठीक उसी प्रकार उषा प्रियंवदा कृत 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास में संस्कृत की लेक्चरर को Sadist मनोवृत्ति का बताया है। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल का जो पति है उसे हम सादवादी की कोटि में रख सकते है। 'प्रेत और छाया' (इलाचन्द्र जोशी) का पारसनाथ भी Idipus ग्रंथि के कारण Sadist हो गया है। अत: कई बार देखा जाता है कि Idipus या Electra Complex के कारण Sadist Complex पैदा होती है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' की राधिका Electra Complex के कारण थोड़ी-बहुत Sadist हो जाती है। राधिका का प्रत्येक कार्यकलाप अपने पिता को मानसिक आघात देने के लिए होता है। पिता को पीड़ित करने में, पिता ने जिस व्यक्ति से पुनर्विवाह किया है उसे दु:खी और पीड़ित करने में राधिका को एक विशेष प्रकार की आनंदानुभूति होती है। इसी Sadist वृत्ति के कारण अपनी विमाता विद्या के प्रति उसका व्यवहार हमेशा वितृष्णापूर्ण रहता है। विद्या को मानसिक त्रास देने के लिए वह कोई न कोई बहाना ढूंढ लेती है। यथा - "रात्रि के उस प्रथम प्रहर में पापा की स्टडी में काम करते हुए राधिका को यह ज्ञान भलीभांति रहता है कि विद्या अपने कमरे में अकेली है और इससे उसे थोड़ा-सा सुख होता है।"[१८]

इस प्रकार विद्या को पीडित करने में राधिका को सुख की अनुभूति होती है। यह उसकी Sadist मनोग्रंथि के कारण है। पहले विदेशी पत्रकार डेनियल पीटरसन के साथ भाग जाना और बाद में मनीश के साथ अचानक

दक्षिण भारत की यात्रा का कार्यक्रम बना लेना, उसके ये दोनों कार्य पिता को मानसिक आघात देने के लिए है । अत: हम कह सकते हैं कि राधिका में Sadist मनोवृत्ति पनप चुकी है । यह इस ग्रंथि की शुरुआत है । आगे चलकर ऐसे लोग दूसरों को भी पीड़ा देने लगते हैं ।

२:०२:०८ मासोकवादी ग्रंथि (Machoist Complex)

यह सादवादी ग्रंथिका विलोम है । जिस प्रकार सादवादी प्रकृति का व्यक्ति दूसरों को पीड़ित करने में आनंद की अनुभूति करता है, ठीक उसी प्रकार मासोकवादी व्यक्ति स्वयं पीड़ित होने में एक विशेष प्रकार की आनंदानुभूति की प्रक्रिया से गुजरता है । ऊपर कहा गया हे कि स्त्री नैसर्गिक दृष्टि से थोड़ी आत्मपीड़क होती है । समाज और परिवार में उसकी 'दोयमदर्जे' की जो स्थिति है उसके कारण उसमें पीड़ा को सहन करने की एक आदत-सी हो जाती है । छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा में जो विरह व्यथा और पीड़ा दृष्टिगत होती है । उसके पीछे कदाचित उनकी यही आत्मपीडक प्रवृत्ति कारणभूत है । यथा - ''मिलन का मत नाम लो तुम, मैं विरह में चूर हूँ'' या ''विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात ।''[१९]

इस प्रकार थोड़ी बहुत आत्मपीडक वृत्ति तो प्रत्येक स्त्री में रहती है (Sadist स्त्री को छोडकर), परन्तु उसका अतिरेक मासोकवादी ग्रंथि को जन्म देता है । स्त्री आत्मपीड़क होती है इसका अर्थ यह कतई नहीं कि पुरुष आत्मपीड़क नहीं हो सकता । कई-कई पुरुष भी आत्मपीड़क हो सकते हैं । मासोकवादी व्यक्ति दूसरों की पीड़ा को भी अपने ऊपर ले लेते हैं । वे दूसरों की व्यथा के भार को ढोते है । 'त्यागपात्र' की मृणाल मासोकवादी प्रकृति की है । 'सुनीता' के श्रीकान्त में भी हमें यह वृत्ति मिलती है । 'रूकोगी नहीं राधिका ?' में राधिका के पिता में हमें मासोकवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं ।

मासोकवादी प्रकृति का व्यक्ति आत्मदमन करता है । उसका यह आत्मदमन कई बार उसके जीवन को विपथगामी भी बना देता है । जैनेन्द्र के 'व्यतीत' उपन्यास का नायक जयंत जिसे प्रेम करता है उसे पाने में असफ ल रहता है । ऐसी स्थिति में वह स्वयं को आत्मदमन के पथ पर डाल देता है । वह चाहता तो सुख सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता था, परन्तु अपनी मासोकवादी ग्रंथि के कारण वह जान बूझकर दु:खों और कंटकपूर्ण रास्तों की ओर अग्रसर होता है ।

२:०२:०९ सेक्स्युअल परवर्सन की ग्रंथि :

कुछ मनोवैज्ञानिक स्थितियों के कारण कई बार व्यक्ति में सेक्स्युअल परवर्सन की ग्रंथि विकसित होती है । कोई व्यक्ति यदि किसी दूसरी व्यक्ति को दिलों जान से चाहती हो, परन्तु किन्हीं कारणों से वह यदि उसको प्राप्त नहीं कर सकता, तब उसमें इस ग्रंथि का विकास होता है । जिस प्रकार कुछ स्त्रियों में कामवृत्ति की मंदता (Coldness) पायी जाती है, ठीक उसी प्रकार कुछ पुरुष भी ऐसे होते हैं जिनमें काम-भावना कम होती है । ऐसे पुरुष व्यवसाय तथा किसी क्षेत्र विशेष में डूबे रहते हैं और उनमें कामेच्छा कभी-कभी जाग्रत होती है । ऐसे लोगों में इस प्रकार की ग्रंथि के विकसित होने की संभावनाएं अधिक होती है । जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास 'व्यतीत' का नायक जयंत एक मेधावी युवक है । स्नातक होने के उपरांत वह आई. सी. एस. की तैयारी कर रहा था । परन्तु वह जिसे दिलों जान से चाहता था उसका विवाह अन्यत्र हो जाता है । फलत: वह आई. सी. एस. भी नहीं करता और किसी पत्र में मामूली एडिटर की नौकरी कर लेता है, गुमनामी की जिन्दगी को ओढ़ लेता है । बाद में उसकी पूर्व प्रेमिका के प्रयत्नों से एक लड़की से वह विवाह भी करता है । परन्तु उक्त ग्रंथि के कारण वह समागम से कतराता है । सेक्सुअली परवर्सन के कारण कुछ

लोग विशेष प्रकार की स्थितियों में ही उत्तेजना का अनुभव करते हैं । उसके लिए वे कई बार पोरनियोग्राफिक लिटरेचर का भी सहारा लेते हैं । गुलशेरखान शानी के उपन्यास 'कालाजल' में रोशन बेग की अम्मां बिदारोगिन अपने देवर रज्जूमियाँ से निकाह पढ़ लेती है । इस शादी का बडा बुरा प्रभाव बालक रोशनबेग पर पड़ता है और उसका व्यक्तित्व सदा-सदा के लिए कुंठित हो जाता है । इसके कारण उसमें सेक्सुअल परवर्सन की ग्रंथि विकसित होती है और फलत: हस्तमैथुन की आदत का शिकार हो जाता है ।[२०] डॉ. शिवप्रसाद सिंह कृत 'अलग अलग वैतरणी' उपन्यास में दीपा एक शिक्षित एवं संस्कारी लड़की है । दुर्भाग्य से उसका विवाह कल्पू जैसे तन-मन के रोगी एवं नपुंसक व्यक्ति से कर दिया जाता है । उसकी जिन्दगी एक तड़प, एक कसक बनकर रह जाती है । उसकी यौन क्षुधा उसे बच्चों, को नंगा करने के लिए प्रेरित करती है । गाँव में उसको लोग 'पटनहिया भाभी' कहते हैं । यहाँ हम कह सकते है कि पटनहिया भाभी उक्त ग्रंथि की शिकार है ।[२१]

२:०२:१० Frigidity Complex

यह ग्रंथि स्त्रियों में पायी जाती है । पुरुषों में जिसे सेक्सुअल परवर्सन की ग्रंथि कहते हैं, स्त्रियों में उसे 'Complex of frigidity' कहते हैं । प्रत्येक वयस्क साधारण (Normal) युवति में जातीय आवेग होता ही है । वह कम-ज्यादा हो सकता है । परन्तु यदि किसी युवति में जातीयता की भावना बहुत ही कम या बिल्कुल नहीं ऐसी होती है तब उस युवति को Frigid (ठंडी औरत) कहा जाता है । यदि किसी युवति का Growth साधारण (Normal) तरीकों से होता है तब तो उसमें यह नहीं मिलेगी, परन्तु यदि किन्हीं कारणों से उसका Normal Growth रूक जाता है, तब उसमें Frigidity की ग्रंथि विकसित होती है । डॉ. Inge तथा Sten Hegeler ने इस संदर्भ में लिखा है -"Frigidity

Literally mean cold. The words are applied to women and imply that they possess no sexual feelings or interests whatsoever. The terms have been used a good deal, and many husbands will be willingly to swear their wives are frigid, that they are completely disinterested in everything connected with sex.''[१२]

'सूरजमुखी अंधेरे के' की रक्तिका तथा 'सफेद मेमने' की बन्नो में हमें यह ग्रंथि दृष्टिगत होती है ।

२:०२:११ निम्फोमेनिया (Nyphomenia)

प्रत्येक स्त्री-पुरुष में एक निश्चित परिमाण में काम-भावना होती है । अत: स्त्री में भी कामभावना (Feeling of sex) होती है । उसका अभाव अवांछनीय समझा जा सकता है । पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि यदि स्त्री में कामभावना का अभाव हो तो उसे Frigid woman कहा जाता है । अत: एक निश्चित मात्रा और परिमाण में उसका होना साधारणता (Normalcy) की कोटि में आता है । परन्तु किन्हीं कारणों से यदि किसी स्त्री में कामभावना का अतिरेक पाया जाता हे तो उसे 'निम्फोमेनिया' कहा जाता है । निम्फोमेनिया से पीडित स्त्री में काम-वासना बहुत ही ज्यादा मात्रा में होती है । हिन्दी में ऐसी स्त्री को 'विपुल वासनावती' कहा जाता है । 'मित्रो मरजानी' की मित्रो, 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई का' की नर्मदा सेठानी, 'जल टूटता हुआ' की डलवा आदि ऐसी ही स्त्रियाँ है । ऐसी स्त्रियों की कामवासना किसी एक पुरुष से संतुष्ट नहीं होती और वे निरंतर नए-नए शिकारों की टोह में रहती हैं । इस संदर्भ में डॉ. इंगे तथा स्टेन हेगलर लिखते हैं कि - ''यदि किसी में कामभावना विपुल परिमाण में है तो उसे 'Erotomaniac' कहा जाता है । यदि नर में यह भावना हो तो उसे 'Satyriasis' तथा नारी में कामवासना का वैपुल्य हो तो उसे

'Nyphomaniac' कहा जाता है । यथा - "Pursuing an exaggeratedly active sex life is classified as erotomania and a person who indulges in an exaggerated amount of sexual activity as an erotomaniac. There is even a special term for male erotomania, namely satyriasis and one for female, nymphomania."[२३]

२:०२:१२ Phobia Complex

मैथुन, भय, आहार और निद्रा की गणना मनुष्य की आदिम वासनाओं में (basic instincts) होती है । अत: मनुष्य मात्र में किसी न किसी वस्तु, प्राणी या जानवर के लिए किसी न किसी प्रकार का भय रहता है । प्राय: देखा गया है कि लोग शेर, चित्ते, बाघ आदि जंगली जानवरों, कुत्तों, बिल्लियों (अंधेरे में), सांप, छिपकली आदि से डरते हैं । डर का यह प्रमाण जब तक एक limit में रहता है तब तक तो उसे साधारण कहा जाएगा परन्तु किसी वस्तु या प्राणी के लिए हद से ज्यादा डर का भाव जब बन जाता है तब उसे phobia complex कहते हैं । यदि किसी व्यक्ति को छिपकली का phobia है तो छिपकली को देखते ही वह असाधारण व्यवहार करने लगेगा, काँपने लगेगा, चेहरा पीला पड जाएगा । phobia किसी वस्तु या प्राणी से हो ऐसा नहीं है, किसी परिस्थिति विशेष या किसी ध्वनि विशेष से भी Phobia हो सकता है । हम एक ऐसी स्त्री को जानते हैं जिसे 'छि: छि:' ध्वनि का phobia है । अगर उसके सामने कोई 'छि: छि:' ऐसा बोले तो उसका चेहरा एकदम विवर्ण (लाल-लाल) हो जाता है और उसका व्यवहार असाधारण (abnormal) हो जाता है ।

२:०३:०१ मनोवैज्ञानिक समस्याएँ

जीवन सतत संघर्ष का नाम है । एक बच्चा जब इस विश्व में पहली बार आँख खोलता है, तो उसके जन्म की यह प्रक्रिया माँ और बच्चे के

जीवन-संघर्ष की प्रक्रिया होती है । जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के निरंतर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पडता है । एक कवि ने सच ही कहा है-

"मुसीबत ही लगता मुझको जीवन का रास्ता है,
सुख की घडियाँ तो उसमें विराम स्थान है ।"

जब हम यात्रा करते हैं, तो यात्रा के दरमियान हमें कई प्रकार के कष्टों से गुजरना होता है । यात्रा-प्रक्रिया में अमुक अमुक स्थानों पर हम कुछ समय के लिए विराम करते है और उसमें हमें सुख की अनुभूति होती है । ठीक उसी प्रकार जीवन भी एक यात्रा है, और उसमें सुख के क्षण विराम स्थान के मानिंद हैं । गुजराती के एक कवि ने भी कुछ इसी मतलब की बात कही है-

"छे जीवननी घटमाळ एवी
सुख अल्प दु:ख थकी भरेली ।"

हमारे विभागाध्यक्ष प्रोफेसर पारूकान्त देसाई साहब के तो गीत-संग्रह का नाम ही है - 'मिलने के क्षण चार' । प्रेम में संयोग और वियोग दो पक्ष होते हैं । संयोग में सुख मिलता है, वियोग में दु:ख । उसी गीत संग्रह में एक गीत है -

"मिलन के क्षण चार बंधु, विरह के दिन रात रे"

अभिप्राय यह कि मनुष्य मात्र के जीवन में सुख की अपेक्षा दु:ख का आधिक्य रहता है । सुख कभी-कभार, दु:ख हमेशा रहता है । इस दु:ख, व्यथा, पीडा, संघर्ष के कारण मानव जीवन सतत अनेकानेक प्रकार की समस्याओं से घिरा रहता है ।

यह समस्याएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, जैसे सामाजिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, सांस्कृतिक समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक

समस्याएँ । कई बार देखा गया है कि यह समस्याएँ परस्पर अनुस्यूत होती है । सामाजिक समस्याएँ आर्थिक समस्याओं का अंग होती है, तो कई बार मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी आर्थिक या सामाजिक समस्याओं के फलस्वरूप आती हैं । उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो जगदीशचन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' के नायक काली की जो समस्याएँ हैं उसमें सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के साथ अन्य प्रकार की समस्याएँ जुडी हुई हैं या वे अन्य समस्याओं के परिणाम या परिपाक रूप में आयी हैं । काली ज्ञानो को चाहता है, परन्तु उनके समाज में जो ऊँच-नीच का संस्तरण (Hierachy) है, उसके कारण दोनों का विवाह नहीं होता । यहाँ प्रत्यक्षतया समस्या सामाजिक लगती है परन्तु उसका उत्स हमें आर्थिक समस्या में मिलता है । जब काली और ज्ञानो के विवाह की बात आती है तब काली आर्थिक दृष्टि से संपन्न नहीं रहा था । जो पैसे वह कमाकर लाया था, वे खर्च हो गये थे । और वह भी एक सामान्य मजदूर की कक्षा (Category) में आ गया था । यदि काली उपन्यास के प्रारंभवाला काली होता तो कदाचित ज्ञानो की माँ काली-ज्ञानो के विवाह का उतना विरोध न करती क्योंकि प्रसिद्ध उक्ति है - 'समरथ को दोष नाहीं गोसाईं ।' अब इस प्रकार यह समस्या सामाजिक भी है और आर्थिक भी है । काली की आर्थिक समस्या के मूल में मनोवैज्ञानिक समस्या कारणभूत है । काली में गाँव के चौधरियों के प्रति एक घृणा, नफ़रत या वितृष्णा का भाव है, क्योंकि शैशवकाल में वह इस वर्ग के द्वारा बहुत उत्पीड़ित रहा है । अत: शहर जाकर जब कुछ रूपये कमाकर आता हे तो वह गाँव के उन चौधरियों को दिखा देना चाहता है । 'दिखा देने की यह भावना' मनोवैज्ञानिक है । काली के स्थान पर यदि कोई 'वणिक पुत्र' होता तो कमाए हुए रूपयों में से वह और रूपये कमाने का कोई कारोबार शुरू करता, परन्तु काली तो अपनी कमाई हुई रकम को कुछ ही दिनों में स्वाहा कर देता है । पक्का मकान बाद में भी बन सकता था, परन्तु गाँव के किसी चमार का मकान पक्का नहीं था और इस प्रकार पक्का मकान बनवाकर

वह गाँव के चौधरियों पर अपना सिक्का गालिब करना चाहता है । उसकी इसी 'शोमेनशीप' के कारण वह फिर से गरीब हो जाता है और तब छज्जू शाह ठीक ही कहता है कि 'चमार की खुशहाली भी उसकी जवानी की तरह चार दिन की ही होती है ।'[२४] इस प्रकार यहाँ हम देख सकते हैं कि काली की आर्थिक समस्याओं के पीछे कहीं न कहीं उसके अवचेतन (Unconscious mind) में स्थित लघुताग्रंथि के भाव उसको कठ-पुतली की तरह नचाते रहते हैं । एक फिल्म में सुना हुआ संवाद स्मृति में कौंध रहा है, 'नाचना तो पड़ेगा ही, डोरी तो किसी और के हाथ में है ।' यदि हम मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार करें तो यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा कि मनुष्य के समूचे कार्य-व्यापारों और व्यवहारों की डोरी उसके अवचेतन में पडी हुई ग्रंथियों और कुण्ठाओं के हाथ में है । मनोवैज्ञानिक समस्याओं का मूल मनुष्य का यह अचेतन मन है ।

कार्ल मार्क्स, एन्जिल तथा अन्य अनेक मार्क्सवादी चिन्तकों की दृष्टि में जीवन की तमाम समस्याओं का उत्स आर्थिक समस्याओं में ही अन्तर्निहित है, परन्तु इसे अर्ध सत्य ही कहा जा सकता है । अर्थ एक बहुत बड़ी समस्या है और आर्थिक अभाव जीवन में अनेक समस्याओं को जन्म देता है । विपरीत इसके आर्थिक संपन्नता से हमारी अनेक समस्याओं का अंत हो जाता है । परन्तु इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि जीवन की तमाम समस्याएँ हाथी के पैर की भाँति आर्थिक समस्याओं में अन्तर्भुक्त होती हैं । यदि आर्थिक समस्याएँ ही सब कुछ होती तो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न ऐसे लोगों में कोई समस्या ही नहीं होनी चाहिए । परन्तु ऐसा नहीं है । कई बार देखा गया है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोग भी अनेक प्रकार की चिंताओं से घिरे रहते हैं । यहाँ तक कि कई बार उनको ठीक से निंद भी नहीं आती और उन्हें सोने के लिए Sleeping pills का प्रयोग करना पडता है । यहाँ किसी के मन में प्रश्न उठ सकता है कि धनवानों को भी धन की चिंताएँ रहती हैं, बल्कि धन की चिंता उनको ही

ज्यादा रहती है । परन्तु कई बार देखा गया है कि ऐसी किसी आर्थिक समस्या के न होने पर भी वे अन्य अनेक प्रकार की चिंताओं से ग्रस्त रहते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त दूसरे प्रकार की समस्याएँ भी होती हैं ।

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि समस्याएँ अनेक प्रकार की होती हैं, जैसे सामाजिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, शैक्षिक समस्याएँ, सांस्कृतिक समस्याएँ आदि-आदि । परन्तु यहाँ हमारा उपक्रम केवल मनोवैज्ञानिक समस्याओं के विवेचन तक ही सीमित रहेगा ।

यहाँ एक और तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा कि इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं के मूल में कहीं-न-कहीं मनोवैज्ञानिक कुंठाओं और मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ होती हैं । अभिप्राय यह कि मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों के परिणाम हैं और इन दोनों को अलगाया नहीं जा सकता । 'मछली मरी हुई' उपन्यास का नायक धन कमाने के लिए रात दिन एक कर देता है । अधिक से अधिक धन कमाना और उसे संग्रहीत करना यह उसकी हवस बन चुका है । धन कमाने के लिए वह अनेक देशों की खाक छानता है और रात दिन धन कमाने के नए-नए तरीकों में खोया रहता है । उसकी जितनी आवश्यकता है उससे कई गुना ज्यादा धन वह कमाता है, फिर भी धन कमाने की उसकी हवस तृप्त नहीं होती । वह एक प्रकार से 'Money-hungry' हो गया है । उसकी यह जो समस्या है, उसका मूल कारण है शैशव अवस्था में बेघर ओर अनाथ हो जाना । बचपन में ही बेघर हो जाने से उसके मस्तिष्क में मकान की भावना ऐसी बैठ जाती है कि कोट्याधिपति होने पर कलकत्ते में 'कल्याणी मेन्सन' नामक स्काय-स्क्रैपर वह खड़ा कर देता है । इस प्रकार उसकी इस धन कमाने की हवस की जो समस्या है उसके मूल में बचपन

से ही उसके मन में जो असुरक्षा का भाव है, वह उत्तरदायी है ।

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका राधिका की समस्या यह है कि वह जीवन में कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती है । शिक्षित एवं विचारवान होने के बावजूद कई बार वह शीघ्रता में गलत निर्णयों की शिकार हो जाती है । सही समय पर सही निर्णय लेने में वह चुक जाती है । इसलिए उसके जीवन की धुरी ही गड़बड़ा जाती है । राधिका की यह समस्या मनोवैज्ञानिक समस्या है, इस मनोवैज्ञानिक समस्या के मूल में उसके अचेतन में पडी हुई पितृबद्धत्व की ग्रंथि है । राधिका की माता का देहावसान उसकी शैशवावस्था में ही हो गया था । राधिका के पिता ने बच्चों का ख्याल करते हुए दूसरा विवाह नहीं किया । अत: राधिका अपने पिता को एक आदर्श पुरुष मानती है । उसके पिता उसके मनोमस्तिष्क पर बुरी तरह से छा जाते है । इस ग्रंथि के कारण वह दूसरे लोगों के संपर्क में भी नहीं आती । उसके जीवन का केन्द्र बन जाते है उसके पिता । यदि समवयस्क सहेलियों और मित्रों के बीच घूमती-फिरती तो ऐसा न होता । परन्तु पितृबद्धत्व के कारण वह दूसरे तमाम लोगों से अलग-थलग रहती है । अत: बाद में लेट उम्र में जब उसके पिता दूसरा विवाह कर लेते हैं, तो पितृबद्धत्व ग्रंथि के कारण उसका चेतनातंत्र इस घटना को बरदाश्त नहीं कर पाता और उसमें अपने पिता के विद्रोह में इलेक्ट्रा कोम्पलेक्स विकसित होती है । इस Electra Complex के बाद राधिका जो कुछ भी करती है, अपने पिता को मानसिक आघात देने के लिए ही करती है और फलत: हर मौके पर वह गलत तरीके से स्वयं को 'रियेक्ट' करती है ।

२:०३:०२ शिशु-मनोविज्ञान की समस्या

शिशु का मन-मस्तिष्क बहुत ही कोमल होता है । बाह्य घटनाओं का आघात भी उसके मन को बुरी तरह से झकझोर देता है । अत: बच्चों के साथ

के व्यवहार में माता-पिता तथा अन्य अभिभावकों को बहुत ही सावधानी और सहजता से काम लेना चाहिए। मन्नू भंडारी द्वारा प्रणीत 'आपका बंटी' उपन्यास में मन्नूजी ने बाल-मनोविज्ञान की समस्याओं का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अजय और शकुन में मनमेल नहीं है। फलतः वे रात दिन झगड़ते रहते हैं। अन्ततः उनका विवाह विच्छेद हो जाता है। विवाह विच्छेद के उपरान्त बंटी शकुन के साथ रहता है। अजय कभी-कभी आकर उसे घूमाने ले जाता है। बंटी के दूसरे मित्रों के माँ बाप साथ ही रहते हैं, तब बंटी के मन में बार-बार यह प्रश्न उठता है कि उसके माँ-बाप साथ-साथ क्यों नहीं रहते। बंटी के मन की समस्याएँ तब और भी बढ़ जाती हैं, जब शकुन डॉ. जोशी से विवाह करके उनके यहाँ चली जाती है। शकुन के यहाँ बंटी का लालन-पालन एक 'प्रिन्स' की तरह हुआ था क्योंकि वह एक स्कूल में आचार्या थी। जब शकुन डॉ. जोशी के यहाँ रहने चली जाती है तब बंटी को डॉ. जोशी के बच्चों के साथ रहना पडता है। शकुन भी उन बच्चों का सविशेष ध्यान रखती है। इसका मानसिक कुप्रभाव बंटी के कोमल मस्तिष्क पर पड़ता है। वह धीरे-धीरे पढ़ने में डल होने लगता है। बात-बे-बात पर लड़ने झगड़ने लगता है। रात में बिस्तर में पेशाब करने लगता है। वस्तुतः यह सब उसमें विकसित हो रही 'Idipus' ग्रंथि के कारण होता है। कृष्ण बलदेव वैद्य के उपन्यास 'उसका बचपन' तथा भीष्म साहनी कृत 'कडियां' उपन्यास में भी शिशु-मन की समस्याओं को भली-भाँति उकेरा गया है।

२:०३:०३ पति-पत्नी के बीच तनाव की समस्या :

पति-पत्नी के बीच तनाव और मतभेद की जो समस्या है वह लगभग ७० प्रतिशत मनोवैज्ञानिक समस्या है। पति-पत्नी में यदि मनमेल हो तो आर्थिक सामाजिक समस्याओं को चुटकी में समाप्त किया जा सकता है। पति-पत्नी में

मतभेद की समस्या राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' में हरबंस और निलिमा के दाम्पत्य जीवन में जो दरारे पड़ती हैं उनके मूल में मनोवैज्ञानिक कारण है। हरबंस स्वयं को मोर्डन दिखाने का प्रयत्न करता है परन्तु वस्तुत: देखा जाए तो उसके भीतर वही सामंतकालीन पुरुष बैठा हुआ है। आधुनिक सभ्यता के तकाजे के कारण वह निलिमा को आधुनिका बनाना चाहता है और इसी उपक्रम में वह उसे साहित्य, संगीत, नृत्यकला, चित्रकला जैसे क्षेत्रों की ओर आकृष्ट करता है। परन्तु निलिमा जैसे ही इन क्षेत्रों में कुछ दक्षता प्राप्त करने लगती है वैसे ही हरबंस उसको रोकना-टोकना शुरु कर देता है। इस प्रकार जहाँ निलिमा के द्वारा उसके अहम् पर चोट पहुँचने का खतरा उसे महसूस होने लगता हे वहाँ वह कतरा कर भाग खड़ा होता है। उसके इस व्यवहार में एक स्थान पर निलिमा हरबंस से कहती है - "तुम सिर्फ़ इस हीन भावना के शिकार हो कि लोग मुझे तुमसे ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है। तुम्हें यह बात खा जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा निलिमा के पति के रूप में करते हैं। तुम्हें डर लगता हे कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे।"[२५] इस प्रकार निलिमा और हरबंस की समस्या पूर्णतया मनोवैज्ञानिक समस्या है। 'आपका बंटी', 'कडियां', 'अठारह सूरज के पौधे' आदि उपन्यासों में भी हमें पति-पत्नी के बीच तनाव और मतभेद की समस्या मिलती है।

२:०३:०४ काम (Sex) की समस्या

मनुष्य को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार हवा पानी और खोराक की आवश्यकता रहती है, ठीक उसी प्रकार स्वस्थ जीवन के लिए काम की संतृप्ति भी आवश्यक है। यदि यह काम तृप्ति न हो तो मनुष्य का मन हिंसक या

विकृत भी हो सकता है । शैलेश मटियानी द्वारा प्रणीत उपन्यास 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' की नर्मदाबेन सेठानी एक सुशील, सुशिक्षित एवं संस्कारी युवति है । वह अपनी कॉलेज के एक युवक से प्रेम करती है । परन्तु भाग्य की विडंबना उसे एक अधबूढ़े सेठ की पत्नी बनने पर विवश कर देती है । सेठानी नर्मदाबेन की अल्हड़ जवानी को सेठ परितृप्त नहीं कर पाते । काम की यह अभुक्ति सेठानी को वर्जनाओं के रास्ते पर ले जाती है । इस कामाभुक्ति के कारण शेठानी एक Nympho औरत हो जाती है और रात-दिन नए-नए शिकारों की टोह में रहती है । ऐसा ही एक शिकार मिस्टर खन्ना है । खादी का झोला कंधे पर लिए वह Social worker के बहाने से बड़े घरों के चक्कर लगाता है । इन बड़े घरों की औरतों की नब्ज वह भली-भांति पहचानता है। उनकी वासना पूर्ति के लिए वह एडवान्स पैसे भी मांगता है । इस प्रकार वह एक प्रकार से Male Prostitution का धंधा करता है । एक दिन शाम के समय नर्मदाबेन सेठानी ने उसे दूसरी बार सिक्रेट रूम में चलने की इच्छा प्रकट की तब बेगैरत होकर वह कहने लगा - "मैं मजदूर नहीं हूँ । इस बिल्डिंग शरीर को बनाये रखना मेरे 'बिजनेस' का पहला उसूल है ।"[२६]

सेठानी नर्मदाबेन की काम-भावना को यदि सही रास्ता मिला होता तो वे शायद विपुलवासनाग्रस्त औरत (Nympho) न होती । जिस प्रकार भोजन के अभाव में मनुष्य भूखग्रस्त (खाऊधरा) हो जाता है, ठीक उसी प्रकार काम (Sex) की अभुक्ति के कारण स्त्री कामभूखी (Nympho) और पुरुष सेक्स-मेनियाक्र हो जाता है ।

'नदी के द्वीप' (अज्ञेय) में यौन विषयक समस्या को एक नया आयाम मिला हे । रेखा विवाहित है, परन्तु मानसिक दृष्टि से उसके पति के साथ उसका कोई तालमेल नहीं है । दूसरी ओर भुवन के प्रति उसे एक सहज प्रेम है । इस

प्रेम के कारण वह भुवन को समर्पित हो जाती है । अब बाह्य या सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो इस सम्बन्ध को असामाजिक और अवैध संबंध कहा जाएगा, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे अधिक मानवीय और संवेदनशील माना जाएगा । रेखा और उसके पति के बीच केवल तन का मल है । मन और बुद्धि का नहीं । अत: रेखा जैसी संवेदनशील नारी यदि भुवन को समर्पित होती हे तो उसके प्रेम में असामाजिकता होते हुए भी संवेदना की दृष्टि से उसे गलत नहीं कहा जा सकता । उसकी यह असामाजिकता मीरा के प्रेम जैसी ही है । फलत: रेखा इस समर्पण के लिए कहीं भी हीनता बोध (Guilt) का अनुभव नहीं करती । सदैव अंक शायिनी रहने पर भी उसके वह यौन परितृप्ति (Filfilment) नहीं होती जो भुवन को समर्पित होने में होती है । रेखा के इस Fulfilment के बारे में भुवन सोचता है ''कि क्या यही फूलफिलमेन्ट नहीं है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके, देने का निमित्त बन सके, जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है ।''[२७]

अमृतलाल नागर के उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनिया की समस्या भी काम की ही है । वह एक ब्राह्मण कन्या है परन्तु उसकी माँ उसका विवाह मसुरियादीन नामक एक बूढ़े से कर देती है । बूढ़ा होने के कारण मसुरियादीन शंकालु स्वभाव का भी है । मसुरियादीन निरगुन के यौवन को छककर भोगना चाहता है । इसीलिए तो खूब पैसे देकर उसने गिरगुन से विवाह किया था, परन्तु उसका शरीर उसका साथ नहीं देता । मसुरियादीन निरगुन में दैहिक लिप्सा तो जगाता है परन्तु उसकी कामाग्नि को शांत नहीं कर सकता। अत: अपनी अनुपस्थिति में वह निरगुन को ताले में बन्द करके रखता है । हवेली में निरगुन किसी मनुष्य की सूरत नहीं देखती । बाहरी दुनिया के नाम पर केवल महेतरानी से उसका परिचय होता है जो उस हवेली में सफाई के लिए आती थी । एक बार महेतरानी छुट्टी पर गई तो उसके स्थान पर उसका बेटा

सफाई करने आने लगा। उसका नाम मोहना था। उसकी जवानी में निरगुन को अपनी यौनक्षुधा को तृप्त करने का एक रास्ता नजर आता है। अपनी तरफ से प्रयास करके वह उस लड़के को पुरुष बना देती है। उसके प्रेम में अंधी होकर निरगुन उसके साथ भाग खड़ी होती है और इस प्रकार ब्राह्मणी निरगुन से वह महेतरानी निर्गुणिया बन जाती है। मोहना के साथ भाग जाने से वह महेतरानी तो बन जाती है, परन्तु संस्कार के तौर पर महेतरानी बनने में उसे काफी समय लगता है। अनेक शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं के साथ वह महेतरानी बनती है। निर्गुण कैसे परिवेश में रहती है वह तो निम्नलिखित संवाद से ही ज्ञात हो जाता है। एक बार निर्गुण जब अपने साँस के पैर दबा रही थी तब अचानक उसकी माई (मामी) उसे पूछ बैठती है - ''मेरे लड़के को फसाने से पहले तूने कितने खसम किए और बोल . . . . तुझे मेरी ही इज्जत पर डाका डालने को सूझा था। रंडी छिनाल कहीं की। तेरी जवानी में आग लग जाए। कलमुई लेके आई भी तो चार पाँच सो रूप्पलियाँ . . . जा चिलम भर के ला। तेरी . . . में कीड़े पड़े। तेरे रोयें रोयें को बिच्छू काटे। तेरी सात पीढ़ियाँ नरक में पड़े। . . .''[२८]

यहाँ यह गौरतलब है कि निर्गुणिया यह सब केवल इसलिए बरदाश्त कर लेती है कि उसकी यौनतृप्ति मोहना के द्वारा होती है। इस प्रकार हम देख सकते है कि काम की समस्या कितनी महती समस्या है और उसके लिए कोई मनुष्य किस सीमा तक जा सकता है।

२:०३:०५ अहम (Ego) की समस्या

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ा बहुत अहम् (Ego) तो होता ही है परन्तु अहम् की भावना जब बढ जाती हे तब वह एक मनोवैज्ञानिक समस्या का रूप धारण करती है। कई बार हम सोचते हैं कि फलां

व्यक्ति ऐसा क्यों करता है ? या उसका व्यवहार ऐसा क्यूं है ? परन्तु जब हम उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हैं तब ज्ञात होता है कि वह तो मात्र कठपुतली है । वस्तुत: उसको नचानेवाला तत्व उसका अहम् है, उसका Ego हैं । इस अहम के कारण मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएँ पैदा होती है । अहम् की भावना क्या है, उसक एक बड़ा ही मनोरंजक उदाहरण हमें हमारी लोक कथाओं में मिलता है । किस्सा सास और बहू का है । एक महाराज किसी गृहिणी के द्वार पर भिक्षा मांगने जाते हैं । बहू मना कर देती है । महाराज निराश होकर वापिस लौट रहे थे । दूर बैठी सास यह तमाशा देख रही थी । उसने महाराज से पूछा कि क्या हुआ ? महाराज ने किस्सा बता दिया । तब सास कहती है - 'महाराज आप मेरे साथ चलिए ।' महाराज को कुछ मिलने की आशा बंधती है । महाराज सास के साथ उसके घर तक जाते हैं । घर पर पहुँचकर सास कहती है - ''हाँ, महाराज, अब आप जाइए, वह कौन होती है मना करने वाली । मैं अभी जिंदा बैठी हूँ । मैं आपको मना करती हूँ ।'' महाराज बेचारा मुँह लटकाकर लौट जाता है । उपर्युक्त लोक वार्ता में बात तो मनोरंजक ढंग से कही गई है, परन्तु मनोवैज्ञानिक ढंग से-दृष्टि से बात सौ फीसदी ठीक है । कई बार बात हम भी वही करने वाले होते हैं पर वह जब दूसरे के द्वारा होती है तो हमारे अहम् को ठेस पहुँचती है । अहम् की समस्या से ग्रस्त व्यक्ति प्रत्येक कार्य या प्रवृत्ति के केन्द्र में स्वयं को रखना चाहता है । उदाहरणतया जन कल्याण का कोई कार्य है । कोई नेता यदि वह कार्य करना चाहता हे, परन्तु वही कार्य यदि दूसरे नेता द्वारा संपादित होता है, तो बजाय प्रसन्नता के वह उसके कार्य में रोड़े अटकाने का कार्य करता है । अहम् की समस्या से ग्रस्त व्यक्ति चाहता है कि जो भी कार्य हो, उसके द्वारा हो । उसका यश उसे प्राप्त हो ।

वस्तुत: देखा जाए तो मोहन राकेश द्वारा प्रणीत उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' की कोई मुख्य समस्या ही नहीं है । वहाँ कोई सामाजिक, आर्थिक,

पारिवारिक दबाव नहीं है । हरबंस और निलिमा के जीवन में यों देखा जाए तो कोई समस्या नहीं है । अच्छा कमाते हैं, अच्छा खाते हैं । सोसायटी में ऊँची प्रतिष्ठा है । किन्तु फिर भी हम देखते हैं कि दोनों सुखी नहीं है । उनका दाम्पत्य जीवन ठीक-ठीक नहीं चल रहा । बल्कि टूटने के कगार पर खड़ा है। कारण यही अहम् की समस्या है । हरबंस निलिमा को चाहता है । निलिमा सुशिक्षित है, प्रतिभाशाली है । हरबंस का अहम् यह चाहता हे कि उसकी पत्नी में और भी कुछ विशेषताएँ हों । अत: वह निलिमा को नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि क्षेत्रों की ओर प्रेरित करता है । यहाँ वस्तुत: हरबंस यह नहीं चाहता कि निलिमा आगे बढ़े, परन्तु निलिमा के द्वारा वह अपने अहम की तुष्टि चाहता है, ताकि मित्रों में, क्लबों में उसकी वाह-वाही हो। परन्तु जब भी निलिमा किसी क्षेत्र विशेष में अधिक प्रगति करती है और उसमें अपनी पहचान बनाती है तब हरबंस उसको साथ-सहयोग देना बंद कर देता है, क्योंकि वह नहीं चाहता कि निलिमा उससे आगे निकल जाए । उसका Ego यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि लोग उसको निलिमा के पति के रूप में जाने । कुछ साल पूर्व 'अभिमान' नामक एक फिल्म आयीथी उसकी समस्या भी लगभग यही थी । संप्रति 'राहें' नामक एक टी. वी. धारावाहिक प्रदर्शित हो रही है उसका नायक गोविन्द ऊँची सोसायटी का है, वह प्रीति नामक एक लड़की को चाहता है परन्तु अपनी ममी के 'Ego Problem' के कारण उसे रमोला नामक एक अन्य लड़की से विवाह सूत्र में बंधना पड़ता है । अब गोविंद तो विवाह सूत्र में बंध गया है । प्रीति उसके जीवन से जा चुकी है, परन्तु फिर भी जब उसे ज्ञात होता है कि प्रीति के जीवन में कोई दूसरा युवक स्थान बना रहा है, तो इस बात से उसे प्रसन्नता नहीं होती । अन्यथा एक सच्चे प्रेमी के नाते उसे इस बात की प्रसन्नता होनी चाहिए कि उसकी प्रेमिका किसी तरह स्थिर हो रही है । जीवन को दिशा देने का एक प्रयास कर रही है । विपरीत इसके वह अप्रसन्न और खिन्न हो जाता है । यहाँ भी समस्या उसके अहम् की है । उसका अहम्, उसका Ego, यह

बरदाश्त नहीं कर सकता कि उसके एक समय की प्रेमिका किसी दूसरे की बाहुओं में झूले ।

जैनेन्द्रकुमार के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'परख' के सत्यधन में द्वन्द्व है । यह द्वन्द्व है हृदय और बुद्धि का । हृदय उसे आदर्शवादिता की ओर ले जाता है, परन्तु सत्यधन में हमेशा हृदय और बुद्धि में से बुद्धि पक्ष ही जीतता है । गाँव की एक बाल विधवा है कट्टो । वह कट्टो को पढ़ाता है । पढ़ाते-पढ़ाते कब उसे चाहने लगता है, सत्यधन को भी पता नहीं चलता । दूसरी तरफ शहर में उसका एक मित्र है, बिहारी । बिहारी की बहन गरिमा की ओर से सत्यधन के लिए रिश्ता आता है । कट्टो के साथ विवाह करने में कुछ नहीं है, बदनामी है, सामाजिक अपवाद का शिकार होने की संभावना है । रूपिया-धेला मिलने की कोई आशा नहीं, बल्कि खोना ही खोना है । दूसरी तरफ गरिमा ऐश्वर्य और सम्पन्नता की प्रतिमूर्ति है । गरिमा के पिता की शहर में एक प्रतिष्ठा है । अत: वह गरिमा से विवाह करता है । दूसरी ओर वह चाहता है कि उसका दोस्त बिहारी कट्टो से विवाह कर ले । परन्तु जब बिहारी कट्टो को मिलने जाता है तब सत्यधन को अच्छा नहीं लगता । इसके पीछे भी अहम् की भावना ही कार्य कर रही है ।

नदी के द्वीप की रेखा अपने अहम् की प्रतिष्ठा एवं तुष्टि के लिए समाज एवं सामाजिक नैतिकता की परवाह नहीं करती । उसमें अहम् की भावना का प्राधान्य इतना है कि वह उसके सामने समाज को नगण्य समझती है । उसे समाज से कुछ लेना-देना नहीं है, वह अपने प्रेम को प्राप्त करने के लिए, भुवन को पाने के लिए, अपनी कामेच्छा की तृप्ति के लिए किसी भी प्रकार की सामाजिक मर्यादा की चिंता नहीं करती । बौद्धिक स्तर पर वह अपने व्यक्तित्व की सत्ता को ही सर्वोपरि मानती है । वह टूट कर भी बिखरती नहीं है, क्योंकि

उसका अहम् बहुत मजबूत है । इस अहम् भावना के कारण उसकी जिजीविषा भी अत्यन्त सशक्त है । रेखा का अहम् अपने स्वयं के अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सकता । इसी के परिणामस्वरूप वह अपने पति हेमेन्द्र को त्याग कर भुवन से बंध जाती है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि रेखा का समूचा व्यक्तित्व उसके अहम् के उद्दाम स्वरूप को प्रकट करता है ।

'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव तथा मन्नू भंडारी के सह-लेखन की कृति है । प्रस्तुत उपन्यास में अमला के व्यक्तित्व को नियंत्रित करने वाले जो दो मुख्य तत्व हैं - वे है प्रतिशोध एवं अहम् की भावना । परित्यकता होने के कारण वह पुरुष वर्ग से प्रतिशोध लेना चाहती है । अत: 'मनुष्यानंद' की रधिया की भाँति वह भी पहले पुरुषों को आकर्षित करती है, परन्तु ज्यों ही कोई पुरुष उसे भोगना चाहता है, वह अपने निर्मम एवं कठोर आचरण से उसे तोड़ देती है । ऐसा करने में उसे एक आत्मतोष का अनुभव होता हे और इस तरह उसके अहम् की तुष्टि होती है । वह कैलाश को बड़ी निर्दयता से अपने जीवन में प्रवेश करने देती है, परन्तु कैलाश जब उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है तो वह निष्ठुर होकर उसके विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती है । वह विवाह को पुरुष वर्ग की एक ऐसी व्यवस्था मानती है जिससे नारी पर अधिकार किया जा सकता है । वह बंधनहीन सुख की कामना करती है । उसमें अहम् की भावना इतनी प्रबल है कि वह स्वयं निरीह एवं दुर्बल नहीं समझती । यथा - ''वह सहना नहीं चाहती है, सूखना नहीं चाहती है, बहना चाहती है निरंतर बहना चाहती है । अनजानी, अनदेखी दिशाओं में बहना चाहती है । दूर-दूर निरूद्देश्य-सी लक्ष्यहीन-सी, पर निर्बद्ध ओर उन्मुक्त ।''[२९]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अहम् की समस्या भी एक महत्वपूर्ण एवं महती (बड़ी) समस्या है ।

२:०३:०६ भय की समस्या

भय की समस्या मनुष्य में असुरक्षा का भाव पैदा करती है । प्रत्येक मनुष्य के अचेतन मन में किसी-न-किसी प्रकार का भय दबा हुआ होता है । मनुष्य जब शिशु अवस्था में होता है, तब उसे अपने माता-पिता, बड़े भाई-बहन, चाचा-ताऊ तथा अभिभावकों का डर होता है । ऐसा थोड़ा-बहुत डर या भय तो प्रत्येक शिशु में होता है । भय की इस भावना के कारण ही शिशु अधिक से अधिक समय अपनी माँ के पास बिताता है, क्योंकि माँ की गोद उसके लिए सुरक्षा का कवच है । परन्तु भय की यह भावना यदि अधिक प्रबल हो जाती है तब वह मनोवैज्ञानिक समस्या का रूप धारण करती है । शिशु अवस्था में यदि कोई व्यक्ति किसी से दबता या डरता है तो उस व्यक्ति के प्रति उसका भय उसके मन में हमेशा-हमेशा के लिए घर कर देता है । कई बार हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति बाहर से बहुत ही कठोर एवं दबंग है, वह किसी से दबता या डरता नहीं है, परन्तु किसी व्यक्ति-विशेष के सामने पड़ने पर उसकी सिट्टी-पिट्टी गूम हो जाती है । गुलशेर खान शानी के उपन्यास 'कालाजल' में बी दारोगिन अपने शोहर मिरजा की मृत्यु के बाद अपने एक दूर के रिश्ते के देवर रज्जूमियाँ से निकाह पढ़ लेती है । इस शादी का बडा बुरा प्रभाव बालक रोशनबेग पर पड़ता है और उसका व्यक्तित्व सदा सदा के लिए कुंठित हो जाता है । वह हमेशा डरा-डरा सा और सहमा हुआ-सा रहता है । वह अधिकांशतः चुप रहता है । उसकी इस चुप्पी को तोड़ने के लिए उसे किसी होस्टेल में भेजा जाता है, तो वहाँ वह हस्त मैथुन (Masturbation) की आदत का शिकार हो जाता है ।[३०] इस प्रकार भयाक्रान्त रहने के कारण रोशनबेग का व्यक्तित्व बहुत कुंठित हो जाता है । वह अपनी माँ बी दारोगिन तथा Step Father रज्जूमियाँ से बहुत ही डरता और दबता है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो प्यार पाता है, वही प्यार दे भी सकता है । ठीक उसी प्रकार भयाक्रान्त

होकर जो व्यक्ति डरता और दबता है, वह अपने नीचे के लोगों को भी डराता और दबाता है। यही कारण है कि माँ-बाप के आगे दब्बू किस्म के रोशनबेग अपने बीवी-बच्चों के लिए एक तेज-तर्रार आदमी हैं। उनकी बीबी हमेशा उनसे आंतकित रहती है।

अज्ञेयजी के तीन उपन्यास - शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने अपने अजनबी - क्रमशः मानवमन की तीन मूलभूत प्रवृत्तियों - अहम्, सेक्स और भय-से जुडे हुए हैं। अभिप्राय यह है कि 'अपने अपने अजनबी' का केन्द्रवर्ती भाव भय है। भय की भावना मुख्यतया मृत्युबोध से सम्बद्ध है। जो अस्तित्ववादी चिंतन के केन्द्र में है। अज्ञेयजी के अस्तित्ववादी चिंतन के कुछ संकेत तो हमें 'नदी के द्वीप' में ही प्राप्त हो जाते है, परन्तु 'अपने अपनी अजनबी' तो एक प्रकार से मृत्युबोध का ही आख्यान है। उपन्यास के सभी मुख्य पात्र सेलमा, योके, यान - पूरे उपन्यास में इस मृत्युबोध से आक्रान्त है।[३१] अस्तित्ववादी जीवनदर्शन के चार मुख्य आयामों को हम इस प्रकार परिगणित कर सकते हैं : (१) मनुष्य की अवशता और तज्जन्य मृत्युबोध, (२) अस्तित्व बोध, (३) अहम् की केन्द्रीयता, (४) निरीश्वरवादिता। इन चार आयामों में से अंहम् की केन्द्रीयता को छोड़कर शेष तीन आयामों का सीधे भय के साथ सम्बन्ध है। जो मनुष्य स्वयं को अवश या लाचार समझता है वह निरंतर एक प्रकार के भय से ग्रसित रहता है। अवशता के परिणामस्वरूप ही मृत्युबोध मनुष्य को सताता है। अस्तित्वबोध के कारण भी मनुष्य निरंतर भयाक्रान्त रहता है और निरीश्वरवादी व्यक्ति कभी निश्चिंत नहीं रह पाता, और जो व्यक्ति निश्चिंत नहीं रह पाता और जो व्यक्ति निश्चिंत नहीं होता वह सतत भयातुर रहता है। आस्तिकवादी चिंतन का और कोई फायदा हो न हो, परन्तु इतना तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि आस्तिकतावादी आदमी श्रद्धावान होता है, उसे उसके जीवन में संतोष और निश्चिंतता होती है। साधारण सी

बात है । बच्चे हमेशा निश्चिंत और निर्द्वन्द्व रहते हैं । जितनी बढिया नींद बच्चों को आती है शायद किसी को आती नहीं होगी । कारण बिल्कुल स्पष्ट है । बच्चे अपने माँ बाप के कारण सदैव अपने को सुरक्षित समझते हैं । वे निरंतर सोचते हैं कि उनके ऊपर कोई है जो उनकी चिंता कर रहा है । ठीक उसी प्रकार जो व्यक्ति ईश्वर को मानता है वह एक प्रकार से निश्चिंत हो जाता है । वह अपनी चिंताओं को ईश्वर पर छोड़ देता है या कम से कम अपनी चिंताओं में ईश्वर को भागीदार बनाता है । परन्तु अस्तित्ववादी दर्शन तो निरीश्वरवादी दर्शन है । अत: जो कृति अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित होगी, भय के भाव की केन्द्रीयता उसमें अवश्यमेव पायी जाएगी ।

२:०४:१ कामजनित कुंठाएँ

काम अर्थात् Sex, इस सृष्टि चक्र में एक महत्वपूर्ण पक्ष है । काम न हो तो जीवन-चक्र ही नहीं चल सकता । यही कारण है कि हमारे यहाँ काम की गणना चार पुरुषार्थों के अंतर्गत की गई है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अत: काम अनिवार्य है, उपयोगी है, इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। परंत हमें यहाँ यह विस्मृत नहीं करना चाहिए कि काम धर्मयुक्त होकर इन पुरुषार्थों में सम्मिलित होता है । यहाँ धर्म से अभिप्राय प्राणी के जातीय गुणधर्म से है। मनुष्य काम की नियोजना मानवधर्म के नीति नियमों के अनुरुप करेगा । मनुष्य के प्राकृतिक गुणधर्मों और नियमों के अनुसार करेगा । पशु तो काम की नियोजना प्रकृति के नियमों के अनुसार ही करता है । मनुष्येत्तर अधिकांश प्राणियों में काम का उद्देश्य केवल प्रजनन है, सृष्टिक्रम को आगे बढ़ाना है । मनुष्य में भी काम का प्रथमत: उद्देश्य तो संतान-उत्पत्ति ही है, किन्तु जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति आगे बढ़ रही है, वैसे-वैसे अब संतान उत्पत्ति के अतिरिक्त काम-जनित आनंद (Sexual enjoyment) भी उसका उद्देश्य बनता

जा रहा है । जब तक नैसर्गिक और सहज ढंग से मनुष्य काम के आनंद को भोगता है, वहाँ तक तो ठीक है, किन्तु जब वह अप्राकृतिक या गैरवाजिब तरीकों को अपनाता है तो उसे कामजनित विकृति कहा जाएगा और इन कामजनित विकृतियों से ही काम कुंठाओं का उद्‌भव होता है ।

२:०४:०२

स्त्री और पुरुष में एक स्वाभाविक कामेच्छा होती है, अत: जब वे मिलते हैं तो उनमें यदि वातावरण सानुकूल हो तो काम की इच्छा पैदा होती है । कामेच्छा के जगने के बाद अन्य काम-क्रीडाओं में संलग्नित होना भी स्वाभाविक ही कहा जाएगा । जिसे कामशास्त्र की भाषा में 'संवनन' कहा जाता है । चुंबन, आलिंगन, नखक्षत, दंतक्षत इत्यादि क्रियाएँ संवनन के अंतर्गत आती हैं । इस प्रकार से कामभोग को तो सहज या साधारण (Normal) माना जाएगा। किन्तु कई लोग विकृत मन के होते हैं । उनमें काम-जनित विकृतियाँ होती हैं। वे काम का सहजरूप से आनंद नहीं ले सकते । उसके लिए उन्हें कई बार तरह-तरह की युक्ति-प्रयुक्तियाँ करनी पड़ती हैं । कई लोगों की कामभावना तब जाग्रत होती है जब वे गंदी और अश्लील तस्वीरों को देखते या दिखाते हैं । कई लोगों की काम भावना तब जाग्रत होती है जब वे गंदी, अश्लील, बाजारू कहानियों को कहते और सुनाते हैं । जिन लोगों को ब्लू-फिल्मों की आदत पड़ जाती है, वे उनके देखे बिना काम उत्तेजना का अनुभव नहीं कर सकते । इन सब चीजों की गणना काम कुंठाओं के अंतर्गत होती है ।

२:०४:०३

जैसा कि ऊपर कहा गया, प्राणी मात्र में कामेच्छा होती है और होनी चाहिए भी । यदि न हो तो उसे एक प्रकार की शारीरिक क्षति माना जाता है।

पुरुष में कामवृत्ति न हो तो उसे नपुंसक (Impotant) माना जाता है, और स्त्री में यदि काम भावना न हो तो उसे ठंडी औरत (हिजड़ी)-(Frigid woman) कहा जाता है । अत: संतुलित प्रमाण में नैसर्गिक काम-भावना का होना अवांछित नहीं है, परंतु यदि कामेच्छा स्वाभाविक से अधिक हो तो उसे भी काम कुंठा कहा जाएगा । यदि पुरुष में कामेच्छा की अतिशयता हो तो उस कामकुंठा को Erotomania और स्त्री में यदि कामवासना का आधिक्य हो तो उसे Nymphomania कहा जाता है ।[३२] कृष्णा सोबती कृत 'मित्रो मरजानी' की मित्रो, किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई (शैलेश मटियानी) की नर्मदाबेन सेठानी तथा इमरतिया (नागार्जुन) की सधुआइन गौरी आदि Nympho औरतों के उदाहरण हैं । इस प्रकार की स्त्रियाँ भयंकर रूप से मुँहफट होती हैं ।

२:०४:०४ समलैंगिक कामभावना

स्त्री और पुरुष, नर और मादा में, यौन संबंध हो; उसे सहज या प्राकृतिक माना जाएगा । इसके विपरीत यदि समान लिंगी व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध होता है, तो उसे कामजनित कुंठा का ही परिणाम समझना चाहिए । यदि दो पुरुषों के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध हों तो उस प्रकार की समलैंगिकता को Homosexuality कहा जाता है । यदि दो स्त्रियों के बीच में समलैंगिक यौन सम्बन्ध होता है तो उसे Lisbianism कहा जाता है और इस प्रकार की स्त्रियों को Lisbian कहा जाता है । इस संदर्भ में डॉ. Inge तथा डॉ. Stenhegeler लिखते हैं - ''People whose sexual urges are directed principally towards persons of their own sex are called Homo sexuals and their interest is called Homosexuality, both terms being derived from the Greek words 'Homo' (meaning 'same') and sex (It has nothing to do with the Latin word Homo which means

man.''[३३] विश्व के बहुत से नामांकित व्यक्ति इस विकृति से पीड़ित मिलते हैं । यहाँ डॉ. धनराज मानधाने का यह कथन ध्यातव्य है - ''बहुत सी असभ्य एवम् बर्बर जातियों में समलैंगिक व्यभिचार श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है । मिश्रवासी अपने पूज्य देवताओं 'होरस' और 'सेत' को समलैंगिक मैथुनकारी बताते हैं । यूनानी लोगों ने तो सैनिक गुणों के लिए इसे आदर्श माना था । 'क्लियोपेट्रा' में सीज़र को युवावस्था में अपने नेता के साथ समलैंगिक सम्बन्ध को स्थापित करते हुए बतलाया है । दान्ते का गुरु लातिनी, सुप्रसिद्ध मानवतावादी म्यू रे, मूर्तिकार माईकल एन्जेलो, कवि मार्लो तथा बेकन जैसे महान व्यक्ति यौन विपरीतता के शिकार थे । यौन विपरीतता साहित्यिक, अभिनेता, संगीतज्ञ, बाल सँवारनेवाले, होटल के बेयरे तथा चर्च के फादर्स में विशेष रूप से पायी जाती है ।''[३४]

पुरुषों में यह समलैंगिकता दो प्रकार की मिलती है । प्रथम प्रकार के अंतर्गत वे लोग आते हैं जो स्त्री पुरुष सम्बन्धों की पूर्ति हेतु उसे अपनाते हैं । इसमें दोनों पुरुष एक दूसरे के शिश्नों को परस्पर रगड़ते हैं और तब तक रगड़ते रहते हैं, जब तक कि वे स्खलित नहीं हो जाते ! अलग-अलग वैतरणी के मास्टर जवाहरसिंह अपने शिष्य रामचेलवा को अपने साथ सुलाते हैं, क्योंकि उनकी पत्नी उनके साथ नहीं रहती थी । वह गाँव में रहकर खेती-बाड़ी पर ध्यान देती थी । अत: मास्टर जवाहरसिंह अपनी काम-वासना की पूर्ति रामखेलवा के द्वारा कर लेते थे । इस प्रकार रामचेलवा न केवल अपने गुरु की सेवा करता था बल्कि उनका बिस्तर भी गर्म करता था ।[३५]

दूसरे प्रकार की विकृति प्राय: नवाबी सभ्यता की देन है, जिसे लौंडेबाजी कहा जाता है । इसमें खूबसूरत लड़कों के साथ गुदामार्गीय मैथुन किया जाता है । डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में सलीमपुर के जमींदार

अशरफुल्ला खाँ 'अशरफ' अपने दादा के कलमी दीवान के साथ एक नमकीन लौंडे को भी रखे हुए थे और फुरसत में इन दोनों ही के पन्ने उल्टा-पुल्टा करते थे ।[३६] इसी उपन्यास में तक्कन चाचा कम्मो नामक लड़के को गोदाम में ले जाते हैं । डॉ. राही मासूम रजा के एक अन्य उपन्यास 'दिल एक सादा कागज' में तो ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं । नारायन गंज की 'स्कूल पोलिटिक्स' में इस लौंडेबाजी का भी महत्वपूर्ण रोल है ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है स्त्रियों में समलैंगिक सम्बन्ध को Lisbianism और समलैंगिक सम्बन्ध रखनेवाली स्त्री को Lisbian कहा जाता है । राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में Lisbian औरतों की कथा का विस्तृत आलेखन मिलता है । किन्हीं कारणों से यदि किसी स्त्री में विपरीत लिंगी के प्रति विस्तृष्णा का भाव पैदा कर दिया जाए तो ऐसी स्त्री, स्त्री की ओर प्रेरित होती है । जिस प्रकार कोई धर्म, संप्रदाय या विचारधारा से सम्बद्ध व्यक्ति अपने धर्म, संप्रदाय या विचारधारा का प्रचार-प्रसार करते हैं, ठीक उसी तरह एक औरत दूसरी औरतों को भी Lisbian बनाने का प्रयत्न करती रहती हैं ।

२:०४:०५ गुदा-मैथुन (**Coitus in Anal**)

गुदा मैथुन भी कामकुंठा से उत्प्रेरित एक कामविकृति का ही प्रकार है । नैसर्गिक दृष्टया पुरुष स्त्री की योनि के साथ संभोग करता है, परन्तु काम विकृति से पीड़ित लोग योनि के स्थान पर गुदा के साथ संभोग करते हैं । काम वैज्ञानिकों द्वारा किए गए सर्वेक्षणों के अनुसार प्राय: .72% to 80% दंपति ऐसे मिले हैं जिन्होंने जीवन में कभी-न-कभी गुदा मैथुन किया है ।[३७] इस प्रकार कुतूहल या नाविन्य के खातिर इस प्रकार के संभोग का प्रयोग करना एक बात है, परन्तु उसकी आदत होना दूसरी बात है । यदि कोई स्त्री या पुरुष नैसर्गिक रतिक्रीड़ा के स्थान पर इस प्रकार की रतिक्रीड़ा से ही संतुष्ट होता है तो उसे

कामजन्म विकृति ही समझना चाहिए। यह तो बात हुई स्त्री पुरुष के बीच के गुदा मैथुन की, परन्तु दो पुरुषों के बीच भी इस प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं। जिसकी चर्चा ऊपर Homo sexuality के अंतर्गत कर दी गई है।

२:०४:०६ पशु-मैथुन (Bestiality)

काम विकृति से पीड़ित लोग या कामक्षुधा से पीड़ित लोग कई बार पशु मैथुन का सहारा ग्रहण करते हैं। इसमें पुरुष किसी पशु के साथ मैथुन करता है। ग्रीक साहित्य में एक दंत कथा मिलती है जिसके अनुसार लीडा एक हंस की सहायता से हेलन नामक एक सुंदर लड़की को जन्म देती है।[३८] वैसे शारीरिक दृष्टि से यह संभव नहीं है, किन्तु मनुष्य का पशु के साथ का मैथुन अवश्य संभव है। गाँव में कई ऐसे किस्से दिखने में आते हैं, जिनमें पुरुषों के गाय, भेंस, बकरी आदि से मैथुन कार्य संपादित होते हैं। मणिमधुकर के उपन्यास 'सफेद मेमने' में ढोरों के डॉक्टर भानमल को एक भेंस के साथ संभोग करते दिखाया है, जिसका जिक्र हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं। भले ही आज के यौन-मनोवैज्ञानिक इन विकृतियों को हानिकारक न मानते हों, परन्तु सामाजिक मर्यादाओं और दबावों के कारण उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर कुप्रभाव अवश्य पड़ता है। ऊपर जिस डॉ. भानमल की बात कही गई है उसमें भीमा नामक व्यक्ति जब डॉ. को भैंस के साथ मैथुन करते हुए देख लेता है तो एक बारगी तो वह बुरी तरह से झेंप जाता है, उसके मन में यह भय समा जाता है कि भीमा यह बात गाँव के लोगों में प्रचारित कर देगा। ऐसे में मनुष्य का व्यक्तित्व कुंठित भी हो सकता है और इस कारण हीनताबोध का शिकार भी हो सकता है।[३९]

२:०४:०७ मुख-मैथुन (Coitus in Mouth)

गुदामार्गीय मैथुन की भांति यह भी अप्राकृतिक है। उसमें पुरुष अपनी जननेन्द्रिय स्त्री की योनि में डालने की अपेक्षा उसके मुँह में डालता है और

इसीमें उसे जातीय आनंद की उपलब्धि होती है । पाश्चात्य देशों में यह कामकुंठा विशेष रूप से पायी जाती है । हमारे यहाँ अभी यह विकृति कम देखने में आती है । इसका एक दूसरा स्वरूप इस रूप में मिलता है, जिसमें स्त्री पुरुष के लिंग को अपने होठों और जिह्वा से स्पर्श करती है । इसे अंग्रेजी में Fellatio कहते है । इसके संदर्भ में डॉ. Inge तथा Sten Hegeler लिखते हैं - "A special form of sexual intercourse in which the woman touches the man's penis with her lips and tongue. It was a big sheeks to the Americans when Kinsey's report showed that variations of this sort were quite common."[४०]

उपर्युक्त मैथुन का एक विपरीत रूप cunnilingus के रूप में मिलता है । जिसमें पुरुष अपनी जिह्वा द्वारा स्त्री के मदनांकुर को स्पर्श करता है । इस संदर्भ में कहा गया है - "A Special intercourse in which the man tickles the woman's clitoris with his tongue. As a result of the violent taboos we impose on our sex lives in our western civilization, this is something one does not talk about. Kinsey, however, mentions that up to 50% of more experienced persons have practised intercourse of this sort"[४१]

२:०४:०८ हस्तमैथुन (Masturbation)

यौन इच्छा की तृप्ति के लिए नर और मादा का समागम आवश्यक है, परन्तु दो में से किसी एक के अभाव में कई बार लोग हस्तमैथुन का सहारा ग्रहण करते हैं । पाश्चात्य कामशास्त्री तो इसे लगभग सामान्य समझने लगे हैं। कामविज्ञानी Kinsey की खोज रिपोर्ट के अनुसार हजारों अमेरिकन में ६२ प्रतिशत अमरिकन स्त्रियों ने तथा 93% अमरिकन पुरुषों ने इसका अनुभव

किया है । आज ऐसे बहुत से काम वैज्ञानिक हैं जो इस क्रिया को बहुत ही सामान्य मानते हैं और उसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं मानते हैं ।[४२] डॉ. पारूकान्त देसाई ने इस संदर्भ में लिखा है - "हालांकि आज के सेक्स मनोवैज्ञानिक इसे विकृति नहीं मानते, वे इसे भयंकर तथा हानिकारक भी नहीं मानते, तथापि इसे कामपूर्ति की एक अस्वाभाविक क्रिया तो माना ही जाएगा और शताब्दियों से संचित संस्कारों के कारण उसका व्यक्ति के मानस और फलत: उसके व्यक्तित्व पर अवांछित कुप्रभाव तो पड़ ही सकता है । माँ-बाप के प्रेम से वंचित रहने वाले या भयग्रस्त वातावरण में पलने वाले एकांतप्रिय बच्चों तथा उन किशोर-किशोरियों में यह विकृति प्राय: मिलती है जिनकी शादी नहीं होती, जो विधुर होते हैं या जिनको विवाह के बाद भी दीर्घ समय के लिए अलग रहना पड़ता है, ऐसे लोगों में यह आदत पायी जाती है ।"[४३] मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' के बंटी में आगे चलकर यह विकृति आ सकती है । उसका संकेत मिलता है । 'एक कहानी अंतहीन' (हृदयेश) के गोविन्दराम तथा 'कालाजल' के रोशनबेग में भी हमें यह विकृति मिलती है । जैसा कि ऊपर कहा गया किसी जमाने में हस्त मैथुन को बहुत ही भयंकर माना जाता था और बढ़ा-चढ़ाकर उसके दुष्परिणाम वर्णित किए जाते थे, किन्तु आज के सेक्स वैज्ञानिक इसे अत्यंत साधारण घटना मानते हैं । डॉ. Inge तथा Sten Hegelar ने इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "It was believed that mastur bation was dangerous and abnormal. It is not so very long ago that people used to tell their children as well as themselves this lie. Masturbation means trying to satisfy one's sexual urges alone and unaided - Even in open minded - sensible books of sexual guidance one can come across the turn of phrase. Mastarbation is entirely harmless provided it is not practised to excess."[४४]

२:०४:०९ पीड़ा द्वारा कामसंतुष्टि (Bondage)

स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक रति संबंधों में परस्पर को थोड़ी पीड़ा देना यह तो शामिल है, बल्कि इसे पीड़ा नहीं रतिजन्य आनंद ही समझना चाहिए। परन्तु जहाँ इसका अतिरेक हो जाता है और व्यक्ति को इस प्रकार की पीड़ा के बिना काम संतुष्टि ही नहीं होती है, वहाँ उसकी परिगणना कामकुंठाओं के अंतर्गत हो सकती है । इस काम कुंठा से पीड़ित लोग कई बार अपने female पार्टनर को, उसके हाथ पैर को, दूसरे अंगों को रस्सियों से बांध देते हैं और फिर उसे तरह तरह से पीड़ा पहुँचाते हुए अंततः पीड़ा का बहुत ज्यादा अतिरेक होने पर मैथुन क्रिया में संलग्न होते हैं और ऐसा करने पर ही उन्हें संतुष्टि का आनंद होता है । डॉ. एस.जे. तुफिल (Tuffil) ने 'Bondage' के अध्याय में एक दंपति का हवाला दिया है - "Bondage affords us both great satisfaction. After a period of preliminary love play to set the scene, I tie my wife tightly to the bed. We have found the best method is to wrap a folded handkershief around the waist then wind a thin rope around that fairly tightly about six or seven times before knotting it. This avoids chafing. I then tie the ends of the rope tightly to the legs of the bed so that my wife's arms are stratched out non either side of her. Her legs are fastened in the same fashion but more loosely, so that she can almost but not quite close her thighs. This adds to her tantalization. Finally I blindfold her with a scarf so she cannot see my movements."[४५] अभिप्राय यह है कि इसमें एक व्यक्ति दूसरे को मारता-पीटता है या किसी भी प्रकार से उत्पीड़ित करता है। उसमें उत्पीड़ित करनेवाला व्यक्ति तो Sadist माना जाएगा और उत्पीडन को झेलने वाला व्यक्ति, यदि उसकी कामसंतुष्टि

केवल उसी तरह से होती है तो, उसे Bondage की कामकुंठा का शिकार माना जाएगा। परन्तु यदि किसी व्यक्ति को उत्पीडित होने में रतिक्रीडा के आनंद की प्राप्ति नहीं होती है तो उसे सामान्य (Normal) माना जाएगा। बहुत सी आदिम जातियों में स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों को पसंद करती हैं जो उनको मारते-पीटते रहते हैं। उसे भी bondage का एक स्वरूप ही समझना चाहिए।

२:०४:१० **Transvestism**

यह भी एक प्रकार की कामकुंठा है, जिसमें व्यक्ति को कामक्रीड़ा का आनंद तभी मिलता है जब वह विपरीत लिंग के वस्त्राभूषणों को धारण करता है। अभिप्राय यह कि पुरुष स्त्री के कपड़ों और आभूषणों को धारण करता है और स्त्री पुरुष की तरह सुसज्जित होती है। बहुत से कामविज्ञानी इस प्रवृत्ति को कामकुंठा न मानकर, उसे Love games के अंतर्गत परिगणित करते हैं। वैविध्य के लिए, कौतुक के लिए या विचित्रता के लिए कोई युगल यदि कभी-कभार ऐसा करता है तो उसे साधारण ही समझा जाना चाहिए। परंतु यदि किसी व्यक्ति को या किसी युग्म को इसके बिना कामसंतुष्टि ही न होती हो, तो फिर उसे कामकुंठा ही समझना चाहिए।[४६]

अत: कहा जा सकता है कि कामक्रीड़ा में नवीनता और वैविध्य के लिए कभी-कभार प्रयोग करना या Love games को खेलना एक बात है। उसे साधारण और सहज ही मानना चाहिए। परंतु व्यक्ति यदि इस प्रकार की बातों का आदी हो जाता है, तब फिर उन बातों की गणना कामकुंठाओं के अंतर्गत होती है। कामकुंठाओं से पीड़ित व्यक्ति का मस्तिष्क विकृत हो जाता है। ओर उन विकृतियों के कारण वह विक्षिप्त (पागल) भी हो सकता है।

२:०५:०१ निष्कर्ष

एक बार समग्र अध्याय पर दृष्टिपात कर लेने से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजरूपेण पहुँच सकते हैं :

(१) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनुष्य के वैयक्तिक, आंतरिक अथवा चैतसिक यथार्थ को आकलित करने का उपक्रम रहता है । अत: यहाँ मनोविश्लेषणात्मक पद्धति को मुख्यता दी जाती है ।

(२) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों, मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा कामकुंठाओं का चित्रण विशेष रूप से पाया जाता है ।

(३) जिस प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यासों में व्यंग्यात्मक क्षणों को पकड़ने की चेष्टा होती हे, ठीक उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों को पकड़ने का प्रयत्न किया जाता है । मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण के कारण ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नाटकीयता एवं जीवंतता का समावेश होता है । मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत लेखक कई बार क्षणों के विस्तार (extension of moments) की प्रयुक्ति को काम में लेता है ।

(४) मानव व्यवहार मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों द्वारा परिचालित होता है । अत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति मन की ग्रंथियों को विश्लेषित करने का प्रयत्न रहता है । लघुताग्रंथि, प्रभुत्वग्रंथि, बंद्धत्वग्रंथि, इलेक्ट्रा कोम्पलेक्स, इडीपस कोम्पलेक्स, सादवादी ग्रंथि, मासोकवादी ग्रंथि, परवर्जन कोम्पलेक्स, फ्रिजीडिटी कोम्पलेक्स, निम्फोमेनिया, फोबिया

कोम्पलेक्स जैसी ग्रंथियाँ मानव जीवन की गतिविधियों को समझने में सहायक होती हैं ।

(५) मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन की सभी समस्याएँ केवल सामाजिक, आर्थिक या पारिवारिक नहीं होती; अपितु जीवन की बहुत सी समस्याएँ मनोवैज्ञानिक होती हैं । आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का उत्स भी कई बार मनोवैज्ञानि क समस्याओं में देखा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ और मनोवैज्ञानिक समस्याओं में पारस्परिक संबंध होता है । अभिप्राय यह कि मनोवैज्ञानिक ग्रंथियां, मनोवैज्ञानिक समस्याओं की उद्भावक हैं ।

(६) मनोवैज्ञानिक समस्याओं में शिशुमन की समस्याएँ, पति-पत्नी के बीच तनाव की समस्याएँ, काम की समस्याएँ, अहम् की समस्याएँ, भय की समस्याएँ प्रभृति को परिगणित किया जा सकता है ।

(७) फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिक मनुष्य की तमाम गतिविधियों में काम (Sex) की महत्वपूर्ण भूमिका अंगीकृत करते हैं । अत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कामजनित कुंठाओं का आधिक्य भी पाया जाता है । कामजनित कुंठाओं में अप्राकृतिक कामवृत्तियाँ, कामेच्छा की विपुलता, समलैंगिकता, गुदा मैथुन, पशुमैथुन, मुखमैथुन, हस्तमैथुन, बोण्डेज तथा transvestism जैसी कामकुंठाओं को परिलक्षित किया जा सकता है ।

* * * *

संदर्भानुक्रम

१. हिन्दी उपन्यास - 'एक अन्तर्यात्रा' : डॉ. रामदरश मिश्र - पृष्ठ ८६-८७

२. उद्धृत द्वारा : डॉ. रामदरश मिश्र : वही : पृष्ठ ८७

३. सुनीता : जैनेन्द्रकुमार : पृष्ठ १६०-१६१

४. व्यतीत : जैनेन्द्रकुमार : पृष्ठ ५७-५८

५. सफेद मेमना : मणिमधुकर : पृष्ठ ५०-५१

६. दृष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ-११८

७. Femina : January 1-2000 : Artical : The Women who have shaped our lives ?

८. दृष्टव्य : काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृष्ठ-१८८

९. See : An Abz of love : Inge and Steam Hegelar : Nevil spearman ltd.: London : P. 105

१०. रूकोगी नहीं राधिका ?: उषा प्रियंवदा : पृष्ठ ३८

११. आपका बंटी : मन्नू भंडारी : पृष्ठ १३१

१२. An Abz of Love : Inge - Sten Hegeler : P. 42-43.

१३. The Sex : Life File : S.J. Tuffil (FR (S) : P. 107.

१४. Ibid : P.108

१५. कामसूत्रम् : वात्सायन मुनि प्रणीत : श्री यशोधरविरचित जयमंगला व्याख्या सहित : हिन्दी व्याख्याकार श्री देवदत्त शास्त्री : पृष्ठ २७२

१६. वही : पृष्ठ २७६

१७. वही : पृष्ठ २७३

१८. रूकोगी नहीं राधिका ?: उषा प्रियंवदा : पृष्ठ ३८

१९. उद्धृत द्वारा : डॉ. पारूकान्त देसाई : हिन्दी साहित्य का सुगम इतिहास : पृष्ठ ५८

२०. दृष्टव्य : कालाजल : गुलशेरखान साहनी : पृष्ठ ७६
२१. दृष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ ८०
२२. An ABZ of Love : Dr. Inge and Dr. Sten Hegeler : P. 139
२३. Ibid : P.116
२४. धरती धन न अपना : जगदीशचन्द्र : पृष्ठ २२९
२५. अंधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश : पृष्ठ ३४५
२६. किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई । शैलेश मटियानी : पृष्ठ ९२
२७. नदी के द्वीप : अज्ञेय : पृष्ठ १९५
२८. नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर : पृष्ठ ८२
२९. एक ईंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी : पृष्ठ ११२
३०. दृष्टव्य : कालाजल : गुलशेर खान शानी : पृष्ठ ७६
३१. दृष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ ६१
३२. See : An ABZ of Love : Dr. Inge - Sten Hegeler : P.116
३३. Ibid : P. 162-163
३४. हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यास : डॉ. धनराज मानधाने : पृष्ठ ८७
३५. दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : शोध प्रबन्ध : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ ४६४
३६. आधा गाँव : डा. राही मासूम रजा : पृष्ठ ९१
३७. दाम्पत्य रहस्य : डॉ. हरकिशनदास गांधी : पृष्ठ २५७
३८. See : An ABZ of Love : P.30
३९. दृष्टव्य : चिन्तनिका : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ ६०
४०. An ABZ of Love : Dr. Inge and Stenhegelar : P. 128
४१. Ibid : P.85
४२. See : Ibid : P.228

४३. चिन्तनिका : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृष्ठ ५९

४४. An ABZ of Love : Inge and Sten Hegelar : P. 227-228

४५. The Sex-life file : S. J. Tuffill FRCS : P.110-111.

४६. See : The Sex Life File : Dr. S. J. Tuffill : P.120 - 136.